मेरी खुशी के मालिक
अवतार मेहेर बाबा

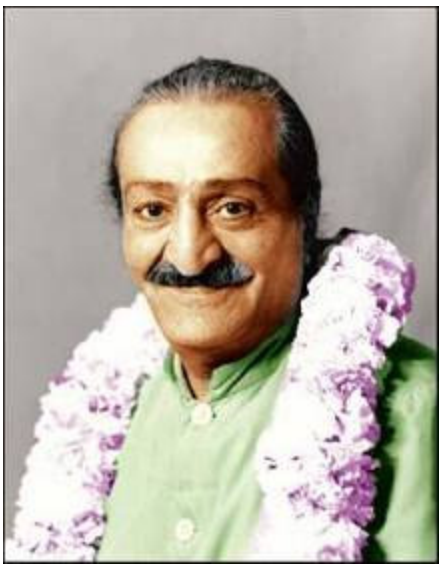

लेखकः डॉ आर. के. श्रीवास्तव

प्राचार्य

शासकीय महाविद्यालय

तामिया, छिन्दवाड़ा, मध्य प्रदेश

प्रकाशकः

अवतार मेहेर बाबा केन्द्र

40/1, साउथ टी.टी. नगर,

भोपाल (म.प्र.) 462 003

दूरभाषः 2763333, 2775739

इस प्रकाशन का उद्देश्य प्रतिस्पर्धात्मक
अथवा आर्थिक लाभ अर्जन नहीं है।

द्वितीय संस्करण

अक्टूबर 2006

समर्पण

काल चक्र के प्रथम प्रचेता
दिग दिगन्त के दर्पण।
स्वीकार करो–हे मेहेरबाबा
मन का मुखर समर्पण।।

अनुक्रमणिका

आमुख

मन की बात

1. पंगु चढ़हिं गिरिवर गहन
2. शबेग़म
3. उनसे जब दिल की बात होती है
4. तेरे सिवा जहाँ में
5. करूणा के सागर
6. जब आशिक मस्त फक़ीर हुए
7. मेरी ख़ुशी के मालिक
8. ये नज़र–नज़र की तलाश है
9. आमंत्रण स्वीकार किया
10. तान्देन

आमुख

कहते है क्राइस्ट को जब सूली पर लटकाया तो आज्ञा देने वाले अधिकारी पायलट ने उनसे पूछा उस अंतिम क्षण में ''सत्य क्या है''? किन्तु क्राइस्ट चुप रह जाते हैं। क्राइस्ट चुप रह जाते हैं दुनिचावी अर्थो में किन्तु सच तो यह है कि उनका मौन रह जाना ही प्रश्न का जवाब था। काश! पायलट समझ गया होता, लेकिन वह मौन की भाषा को न समझ सका। वह समझ भी कैसे सकता था? उसे तो मौन की भाषा की कोई खबर भी न रही होगी, सम्भवतः वह तो यही समझा होगा कि क्राइस्ट को सत्य का जरा भी मान नहीं।

ऐसे ही प्रश्न के तारतम्य में बुद्ध के भी बड़े अनुठे अनुभव रहे। भगवान बुद्ध से जब कोई प्रश्न करता कि सत्य क्या है? तो बुद्ध कहते ''बस इस बात भर को छोड़ दो और सब पूछ लो'' किन्तु जब वह व्यक्ति यह कहता कि मैं तो केवल यही जिज्ञासा लेकर उपस्थित हुआ हूँ आपके समक्ष कि जानुं कि सत्य क्या है? तो बुद्ध कहते ''तो फिर सभी कुछ पूछना बंद कर दो और चुप हो जाओ''। वह पूछता ''चुप हो जाने पर मैं जानुंगा कैसे''? तो बुद्ध कहते ''पहले कुछ दिन चुप तो रह जाओ फिर मैं तुमसे पूछुंगा कुछ पता चला कि नहीं? समझ सके कि नहीं?

थोड़ी दूरी पर बैठा था एक भिक्षु। बुद्ध की इस बात पर वह ठहाका मार कर हँसने लगा। उसने कहा ''मेरे मित्र, धोखे में मत पड़ जाना, जो भी पूछना हो अभी पूछ लो, फिर अवसर ही न रहेगा पूछने का। कुछ समय पूर्व मैं भी इनके पास यही पूछने आया था कि सत्य क्या है? कहाँ हैं? तो इन्होंने यही जवाब दिया था कि साल भर चुप रह जाओ तब पूछना, मैने इनकी सलाह मान मौन धारण कर लिया वर्ष भर। अब पूछने को कुछ बचा ही नहीं। अब ये मुझसे पूछते हैं, पूछो सत्य के बारे में कुछ तो पूछ लो, अब क्या पूछूँ कुछ पूछने व जानने की अब गुंजाइश ही कहाँ रही?

मुझे स्मरण है आज से दस वर्ष पूर्व भोपाल में आयोजित अवतार मेहेर बाबा प्रेम सम्मेलन में मेरी बड़ी बेटी विजयश्री ने आचार्य गिरिजानंदन दुबे (अब स्वर्गीय)

जो मंच से बाबा प्रेमियों के प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे, से यही प्रश्न पूछा था ''शाश्वत सत्य क्या हैं? और जवाब में आचार्य श्री दुबे मौन रह गए थे। कुछ क्षणों बाद बोले ''बेटे, तुम्हारे प्रश्न का यही उत्तर है।'' मैं नहीं जानता इस उत्तर से मेरी बेटी के प्रश्न का उसके मानस में समाधान हुआ था या नहीं किन्तु वह इस उत्तर पर कुछ विस्मित सी अवश्य हो गई थी।

अवतार मेहेर बाबा सत्य के इस उद्घाटन में एक दो नहीं सैकड़ों कदम आगे जाकर लोगों के सामने अपनी अनूठी शैली में इस प्रश्न का उत्तर प्रस्तुत करते है कि सत्य क्या हैं? वे अपने जीवन काल में लगभग चवालीस वर्षो तक मौन रहे और लोगों की इस जिज्ञासा का समाधान करते रहे कि सत्य क्या है? जो समझ सके वे उसी समय समझ गए और उनके अपने हो गए जो समझने के कगार पर थे वे कालान्तर में परत्पर सत्ता के उस विलक्षण प्रयोग को समझ अपना जीवन धन्य कर सके किन्तु जा नासमझ हैं वे आज भी नासमझ ही हैं और यत्र तत्र अपनी दिमागी उपज से बाबा के मौन की व्याख्या प्रस्तुत कर रहे हैं।

वास्तव में जीवन की हर समस्या हमारी अपनी बनाई हुई है। उस पर हमारे अपने ही हस्ताक्षर हुआ करते हैं फिर चाहे वह परमात्मा के मंगलमय मिलन की ही क्यों न हो? मैंने कहीं एक बहुत ही कीमती बात पढ़ है एक लुहार के बारे में जिसने लोहे की श्रृंखलाएँ तोड़ने व बनाने में महारत हासिल कर रखी थी। लोगों का ऐसा मानना था और उसका अपना भी कि उसकी बनाई हुई हथकड़ियाँ इतनी मजबूत हुआ करती थी कि उन्हें कोई नहीं तोड़ सकता था। कहा जाता है कुछ समय बाद उस देश पर दूसरे देश के राजा ने चढ़ाई कर दी और जैसा कि हमेशा युद्ध में होता है, दुश्मन की सेना ने सभी श्रेष्ठ व्यक्तियों को गिरफ्तार कर लिया यह लुहार भी गिरफ्तार हो गया। किन्तु अपने कौशल में प्रवीण यह लुहार जरा भी विचलित नहीं हुआ अपनी गिरफ्तारी से, वह पूर्ण शान्त और गम्भीर बना रहा क्योंकि उसे विश्वास था कि जब भी वह चाहेगा इन कड़ियों को तोड़कर मुक्त हो जायेगा। सैनिकों ने उसे बन्दी बनाकर एक कमरे में बंद कर दिया था। जब उसे एकान्त मिला तो उसने कड़ियाँ तोड़ना चाही उसने अपनी सारी कला लगा दी उन्हें तोड़ने में किन्तु कहीं से भी कोई कड़ी न टूटी। तब उसने एक एक कड़ी को ध्यान से देखा तो थोड़ी

देर में उसके प्राण काँप गए यह देख कर कि एक विशेष जगह पर कड़ी में उसके स्वयं के हस्ताक्षर हैं जो वह स्वयं अपने द्वारा निर्मित कड़ी पर कर दिया करता था। उसने कभी सोचा भी न होगा कि जो जंजीरें वह बना रहा है वे एक दिन उसके ही हाथों में पड़ेंगी और वह बन्दी हो जायेगा। वह रोने लगा कि यदि ये कड़ियाँ किसी और की बनाई होती तो उन्हें तोड़ा भी जा सकता था किन्तु ये तो स्वयं उसकी ही बनाई हुई हैं जिन्हें तोड़ना कठिन था। वे कमजोर नहीं मजबूत थी।

उस दिन उस कुशल शिल्पी को कष्ट का जो अहसास हुआ होगा, वैसा ही अनुभव हर व्यक्ति को होता है जब उसकी तन्द्रा टूटती है और जागकर देखता है। जब वह जागता है तो पाता है कि हर जंजीर पर उसके ही हस्ताक्षर हैं। लेकिन तब तक बड़ी देर हो चुकी होती है और हम हैं कि हमने अवतार की जाँच परख के भी अपने पैमाने बना रखे हैं।

मेरे एक मित्र हैं डॉ गौरीशंकर दुबे जो आजकल इन्दौर में हैं। उन्होंने एक घटना सुनाई कि एक बार वे इन्दौर से भोपाल बस द्वारा आ रहे थे। बस का परिचालक एक रूखी तबियत का आदमी था, व अश्लील शब्दों का प्रयोग कर रहा था। इन्हें महिलाओं की उपस्थिति में उसकी भाषा से कष्ट पहुँचा तो इन्होंने उससे स्वयं ही बात करनी शुरू कर दी ताकि उसके मनोभावों में तब्दीली आये और गलत शब्दों के प्रयोग में उसे कुछ झिझक उत्पन्न हो। डॉ दुबे ने आगे बताया कि बातचीत के क्रम में इन्होंने अवतार मेहेर बाबा का जिक्र छेड़ दिया। वह परिचालक मेहेर बाबा के सम्बन्ध में पूर्ण अनभिज्ञ था किन्तु इनके द्वारा बाबा के सम्बन्ध में बताई जाने वाली बातों को बड़े धैर्य एवं तन्मयता से सुनता रहा। इस प्रकार ये भोपाल पहुँचे। बस से उतरने के बाद जैसे ही श्री दुबे आगे बढ़े कि एक वृद्ध सज्जन ने इन्हें सहसा रोका और अपना परिचय दिया और कहा कि वे इसी बस में उनके पीछे वाली सीट पर बैठे थे। आपके द्वारा परिचालक को मेहेर बाबा के सम्बन्ध में बताई गई हर बात को इन्होंने बड़े ध्यान से सुना है और आज उन्हें विश्वास हो गया कि मेहेर बाबा वास्तव में इस युग के अवतार है।

अपनी बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए उन्होनें डॉ दुबे को बताया कि उन्होंने चालीस वर्ष पूर्व मेहेर बाबा को देखा था वे मूलतः अहमदनगर के समीप के

निवासी थे, किन्तु वे इस बात को मानने को कतई तैयार नहीं थे कि मेहेर बाबा अवतार पुरूष है। उन्होंने यह प्रण कर रखा था कि यदि किसी अन्य राज्य में (महाराष्ट्र से बाहर) कोई अपरिचित व्यक्ति मेहेर बाबा को परमात्मा का अवतार कहे तो वह मानने को तैयार होंगे कि वास्तव में मेहेर बाबा अवतार हैं। आज वह दिन आया – चालीस वर्ष बाद कि अन्य राज्य में आपके द्वारा सुना – तो मेरा संकल्प पूरा हुआ अब मैं भी मानता हूँ कि वास्तव में मेहेर बाबा इस युग के अवतार हैं। तो देखा आपने उन महाशय ने परमात्मा को परखने के अपने मापदण्ड निर्धारित कर रखे थे। लेकिन क्या हुआ, जीवन के बेहतरीन चालीस वर्ष खो दिए – इस बीच वह परमात्मा भी अपनी भौतिक लीला समेट, वापिस चला गया, अगर ये पैमाने परखने के न बनाये गए होते तो सम्भव था साक्षात प्रभु के मानव शरीर में जी भी दर्शन करते, उनका प्रेम पाते उनकी करूणा व आशीष पाते और फिर सम्भव है प्रेम की इतनी गहरी डुबकी लगाते कि दिल कह उठता –

''आओ प्यारे नयन में, पलक मूंद भर लेऊँ
न मैं देखूँ और को, न तोहि देखन देऊँ।।

प्रेम की ऐसी ही कुछ जीवंत घड़ियाँ मेरे जीवन में भी आई जिन्हें घटित होने पर मैने हर बार उन्हीं ''एक'' को अपना प्रणाम किया है। एक एक घटना को बड़े जतन से हृदय में संजोया व संभाल कर रखा है। कहते हैं किसी गाँव में एक बार एक महात्मा उपदेश देने पहुँचे। उस गाँव के लोग बड़े क्रोधी व अधर्मी थे। महात्मा जी ने जब अपनी वार्ता प्रारंभ की तो लोगों न उपद्रव करने शुरू कर दिए। कुछ लोगों ने काँटों के हार भी पहनाये। लेकिन स्वामी जी मंद मंद मुस्कुराते रहे। उन्हें इस तरह मुस्कुराते देख कर गाँव के मुखिया को बड़ा क्रोध आया। अपने साथियों से बोला इनका इतना अपमान किया फिर भी कोई असर नहीं। तभी एक व्यक्ति नु सुझाव दिया ''इन्हें जलील करने के लिए धर्म सम्बन्धी कोई ऐसा सवाल पूछो ताकि बिना उत्तर दिए ही ये भाग जायें।''

काफी सोच विचार के उपरान्त मुखिया ने पूछा ''महात्मा जी आप यह बताइये कि रामायण सच है या झूठ?''

प्रश्न अजीब था, लेकिन फिर भी महात्मा जी ने मुस्कुराते हुए कहा ''जब रामायण लिखी गई तब मैं नहीं था, राम जब विचरते थे, तब भी मैं नहीं था इसलिए मैं किस प्रकार कहूँ कि इसक पढ़ने से मैं सच्चा बन गया....। बन्धुओं अपना हाल भी इस घटना से कुछ ज्यादा अलग नहीं हैं, बाबा जब विचरते थे तब भी मैं उन्हें नहीं जानता था किन्तु जब से उन्हें जाना तो जीवन की धारा ही बदल गई। मोह भंग हुआ तो काम तिरोहित, क्रोध नशा विहीन हुआ तो रा अनुराग में बदला। ईर्ष्या ईश में बलली तो घृणा कृष्णा में परिवर्तित हो गई। अब न जीवन में सुख है और न दुख, न मान और न अपमान, न दुख अपयश से है न सुख यश से–बस एक प्रवाह है जिसे मैं जीना चाहता हूँ जी भर अपने प्रियतम बाबा के साथ–इसलिए एकान्त के क्षण मुझे बड़े रूचिकर लगने लगे हैं – गहन सन्नाटे में लगता है प्रियतम के गहन मौन का फैलाव हो रहा है और मैं साक्षी भाव से उसे जिए जा रहा हूँ पिये जा रहा हूँ। यीशु का विश्वास, मोहम्मद की मस्ती, बुद्ध की करूणा, कृष्ण का प्रेम व राम की मर्यादा के रंग बिरंगे चित्र एक साथ स्पष्ट प्रतीत होते हैं प्रियतम बाबा में, बस आवश्यकता है केवल श्रद्धा से भरे हुए अपने निश्चल हृदय की। प्रेम से भरी हुई आपकी आँखें प्रियतम बाबा को उनके साकेत से खींचकर आपके आंगन में लाकर खड़ा कर देंगी, बस एक बार प्रयोग करके तो देखो बिना किसी आडम्बर के। प्रस्तुत कर दें स्वयं को ठीक से वैसे ही जैसे हम हैं – काट छाँट कहाँ करनी है – यह उस पर छोड़ दें – आनन्द की गंगा प्रवाहित हो उठेगी फिर आप उस से अपना कोई भी मनचाहा रिश्ता कायम कर सकते हैं, मित्र, सखा, पिता, पुत्र यहाँ तक कि पत्नी के रिश्ते को भी हमारे प्रियतम ने स्थापित करने की कृपा की है – अभी ज्यादा देर नहीं हुई हमें आज भी अपना मनचाहा रिश्ता बनाने की अनुमति है अपने बाबा की ओर से .....।

आपके हाथों में इस लघु पुस्तिका ''मेरी खुशी के मालिक'' प्रियतम बाबा की ऐसी ही अमूल्य कृपा का प्रतिफल है। प्रेम व विश्वास का अद्‌भुत सामंजस्य जब व्यक्ति के हृदय में प्रतिबिम्बित होने लगता है तो मेहेर बाबा आपके हृदय में उठने वाली हल्की से हल्की तरंग का भी जायजा लेने को उत्सुक रहते हैं।

अपने जीवन की ऐसी ही कुछ घटनाओं को इस लघु पुस्तिका के रूप में प्रस्तुत करने में यदि प्रोफसर जे. एस. राठौर, कुलपति, रीवा विश्वविद्यालय, रीवा का अनवरत प्रेम रहा तो श्रीमति लता राठौर का मातृत्व स्नेह, डॉ सुरेन्द्र भटनागर पर्यावरण विभागाध्यक्ष रीवा की अनवरत हौसला अफजाई रही तो श्री कृष्ण गोपाल श्रीवास्तव की निरंतर–निरंतर शुभकामनाएं। भोपाल के श्री डी. वाई. नाफड़े और ताई ने अपने स्वभावनुरूप आशीष दिए तो श्री टी. आर. शंभूलिंगम अपने जीवन की गहनतम पीड़ा के दिनों में भी बिना अपनी पीड़ा व्यक्त किए हुए अपने पत्रों से मुझे हर आवश्यक जानकारी सम्प्रेषित करते रहे। श्री जोगदंड परिवार का निश्चल प्रेम मेरे विश्वास को सदा ही प्रगाढ़ करता रहा। श्री किरण नाफड़े व श्री कुमार नाफड़े पुस्तक को इस कलेवर में लाने के लिए जिस उत्सुकता से संलग्न रहे उसे व्यक्त करने में असमर्थ हूँ – इन सभी के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ। अपने परिवार के सभी परिजनों यथा पत्नि, पुत्र, बेटियाँ व अभी अभी शामिल हुई पुत्रवधु का प्रेम व सहयोग निश्चय ही इस लघुकृति के लेखन में मेरे सम्बल बने। अपने प्रस्तुत लेखन में मैंने जिन गीतकार और कवियों की रचनाओं का उपयोग किया है, मैं दिल से उनका कृतज्ञ हूँ और सदैव उनका आभारी रहूँगा।

सप्रेम जय बाबा सहित।

रामकृष्ण श्रीवास्तव

मन की बात

कभी एक बड़ी कीमती कथा पढ़ने को मिल थी। एक राजा का मित्र सन्यासी हो गया। कई वर्षो तक वह देश–विदेश की सैर करता रहा और फिर एक दिन उस नगर भी पहुँचा जहाँ उसका मित्र राजगद्दी पर विराजमान था। राजा ने अपने सन्यासी मित्र को राजदरबार में आमंत्रित किया और स्वागत सत्कार के बाद कहा ''मित्र तुमसे मिलकर अतीव प्रसन्नता हो रही है, सारी दुनिया की तुमने यात्रा की और मुझे विश्वास है कहीं न कहीं से कोई न कोई उपहार तुम मेरे लिये अवश्य लाये होंगे''। उस सन्यासी ने बड़ी ही विनम्रता से कहा ''राजन्, मुझे हर समय यह ख्याल बना रहा है कि मैं आपके लिये अनूठा सा उपहार लेता जाऊँ, किंतु जो भी वस्तु लेने की सोचता उसी वक्त यह विचार आ जाता है कि ऐसा कैसे संभव हो सकता है कि एक राजा के पास यह वस्तु अब तक न पहुँची हो? बड़ा मुश्किल हो गया चुनाव करना कि आपके लिये क्या ले चलूँ? अंत में एक विशेष वस्तु मेरे ख्याल में आ ही गई और वही मैं आपके लिये लाया हूँ।

अब तो राजा की उत्सुकता और भी बढ़ गई, अतः अपनी व्यग्रता प्रगट करते हुए उसने पूछा लेकिन वह वस्तु है कहाँ? मित्र मुझे शीघ्र ही बताओ किंतु साथ ही जरा विचलित भी हुआ यह देखकर कि इसके पास तो मात्र एक झोली है। वह अनूठा उपहार उसने कहाँ रखा होगा? तभी उस सन्यासी ने झोली में हाथ डालकर उसमें से एक सस्ता सा दर्पण राजा के हाथ में थमा दिया और कहा, ''महाराज मैंने सोचा आपके पास और तो सब कुछ होगा किंतु ऐसी वस्तु न होगी जिसमें आप स्वयं को देख सकें। इसलिए यह दर्पण मैं आपके लिए लेता आया हूँ''।

मुझे पता नहीं वह दर्पण कैसा रहा होगा और राजा उसमें स्वयं को देख सका या नहीं? किंतु अवतार मेहेर बाबा के प्रेम के एक–एक क्षण से निर्मित एक सस्ता सा दर्पण इस पुस्तिका ''मेरी खुशी के मालिक'' के रूप में मैं भी आपके हाथों में सौंप रहा हूँ – इस विश्वास के साथ कि शायद इसमें आप भी स्वयं का प्रतिबिंब निहारने का प्रयत्न करें।

पुस्तक की भाषा–हृदय की भाषा है – जैसी प्रस्फुटित होती रही ठीक वैसी ही प्रस्तुत की गई है। साहित्यिक विवेचना का न तो कहीं अनावश्यक विस्तार है और नही इसे आवश्यक समझा गया।

यदि मेरा यह एक छोटा सा विनम्र प्रयास आपके हृदय की वीणा के तारों को – क्षण भर को ही सही झंकृत कर सका तो निश्चित ही मेरे जीवन के महाकाव्य का एक सर्ग सार्थक हो गया है।

रामकृष्ण श्रीवास्तव

पंगु चढ़हिं गिरिवर गहन

बात सन् उन्नीस सौ चौरासी की है। मैं भोपाल के चार इमली क्षेत्र में ई–7/12 सरकारी आवास में निवास करता था। उस समय अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय में पर्यावरण विज्ञान विभाग के विभागाध्यक्ष प्रोफेसर जगदम्बा सिंह राठौर थे। प्रोफेसर राठौर का मुझ पर बड़ा स्नेह रहा है। वे जब भी भोपाल आते, सारे कष्टों को अनदेखा कर मेरे घर ही रूकते। हम लोग स्वाभाविक ही बाबा की बातें करते और कभी–कभी भेपाल केन्द्र के बाबा प्रेमियों द्वारा आयोजित प्रति बुधवार की संध्या को यदि ऐसा संयोग जुड़ा तो शामिल भी होते।

उन्हीं दिनों प्रोफेसर राठौर को म. प्र. शासन ने काट्जू पुरस्कार से सम्मानित किया था। यह पुरस्कार उन्हें इन्दौर में म.प्र.काउंसिल ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलाजी के तत्वावधान में आयोजित तत्कालीन राष्ट्रपलि स्व. श्री ज्ञानी जैलसिंह के कर कमलों से प्राप्त हुआ था। प्रोफेसर राठौर इंदौर से लौटकर जब अपनी पत्नी श्रीमती लता राठौर जो स्वयं में अनन्य बाबा प्रेमी और प्रियतम की कृपा प्राप्त महिला हैं, के साथ भोपाल लौटे तो मेरे घर पर ही रूके। सम्भवतः वह बाइस फरवरी सन् चौरासी की तिथि थी।

उसी दिन डाक से मुझे एक पत्र मिला। जत्र लागोस विश्वविद्यालय नाइजीरिया (अफ्रीका) से आया था। मैंने उसे पढ़ा – उसमें मुझे लागोस विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित पारिस्थितिक विज्ञान पर सातवें अर्न्तराष्ट्रीय वैज्ञानिक सम्मेलन में एक सत्र की अध्यक्षता करने हेतु आमंत्रित किया गया था। पत्र पढ़कर हृदय तो प्रसन्नता से भर उठा किंतु तत्क्षण एक गहन निराशा भी उत्पन्न हो चली कारण कि वह मेरी पहली विदेश यात्रा थी इसलिए मेरे पास मेरा पासपोर्ट नहीं था, म.प्र.शासन से अनुमति चाहिए थी, हवाई टिकिट की व्यवस्था करनी थी आदि – आदि। उन दिनों आने–जाने का किराया ''एअर इंडिया'' से लगभग साढ़े सत्रह हजार रूपया था और सम्मेलन में आठ मार्च उन्नीस सौ चौरासी को शामिल होना था। मेरे पास मात्र तेरह दिन का समय था और तैयारी के नाम पर कुछ नहीं – इसलिए मन उदास हो गया।

मैंने वह पत्र प्रोफेसर राठौर के हाथों में दे दिया उन्होंने उसे पढ़ा और पढ़कर मुझसे कहा कि इसे ले जाकर तुम अपने पूजा गृह में जहाँ प्रियतम बाबा का चित्र रखे हो वहाँ रख दो, मैंने वैसा ही किया। दूसरे दिन अपने दैनिक कार्यो में ही व्यस्त रहा शाम को राठौर साहब वापिस रीवा चले गए।

उस दिन चौबीस फरवरी सन् चौरासी का दिन था, प्रियतम को नमन करने के बाद उस पत्र को मैने उठाया और पुनः पढ़ा अब मेरे पास ग्यारह दिन बचे थे, मैं चिन्तित था कि पासपोर्ट आफिस के नियमानुसार केवल पासपोर्ट तैयार होने के लिए पैंतीस दिन का समय चाहिए था। पासपोर्ट आफिस में मेरी किसी से जान पहचान भी न थी कि विशेष परिस्थितियों में अपनी पहचान के बल पर तैयार करा लेता। इसी उधेड़बुन में बैठा था – एक निराशा मन पर छा रही थी कि इतना अच्छा अवसर हाथ से जा रहा है किन्तु प्रियतम बाबा की तो व्यवस्था कुछ और थी। मैं गहन सोच में डूबा हुआ था कि उसी समय एम.एस.सी. की एक छात्रा अपने स्कूटर से कुछ काम से मेरे घर आई मुझे उदास देख उसने पूछा – ''सर आप किस सोच में डूबे हुए हैं?'' पहले तो मैंने उसे बताना कोई आवश्यक नहीं समझा किन्तु उसके आग्रह करने पर मैंने उसे सारी स्थिति से अवगत करा दिया और यह भी बताया कि केवल पासपोर्ट बनवाने के लिए पैंतीस दिन चाहिए इस स्थिति में मेरी यात्रा कैसे सम्भव हो पाएगी?

उस छात्रा ने उसी समय अपना स्कूटर लौटाया और कहा ''सर मैं अभी आई''। कुछ समय बाद लौटकर उसने मुझे बताया कि पासपोर्ट आफिस के सबसे बड़े अधिकारी श्री सूरी हैं और उसके उनसे घरेलू सम्बन्ध हैं, वह उन्हीं के पास यह निवेदन करने गई थी कि मेरा पासपोर्ट उसी दिन तैयार करके मुझे प्राप्त हो जाय। उसके अनुसार पहले तो सूरी साहब ने इतनी जल्दी कार्य करने में अपनी असमर्थता जताई किन्तु उस छात्रा को बेटी जैसा मानने वाले अधिकारी श्री सूरी उसके हठ के सामने ज्यादा देर टिक न सके और उन्होंने उस छात्रा से बोला कि जाकर अपने सर से कह दो कि वे ग्यारह बजे पासपोर्ट आफिस आकर उनसे सम्पर्क करें। उस छात्रा ने प्रातः ग्यारह बजे मुझे श्री सूरी से उनके कार्यालय में मिलने का आग्रह किया।

उस दिन अपने कॉलेज टाइम टेबिल के अनुसार मेरा ग्यारह बजे से एम.एस. सी. क्लास था। मैंने सर्वप्रथम क्लास में जाना ही उचित समझा। अपना अध्यापन कार्य समाप्त कर मैं श्री सूरी से मिलने लगभग एक बजे उनके कार्यालय पहुँचा। जब मैंने उन्हें अपना परिचय दिया तो वे नाराज इस बात पर हुए कि उन्होंने मुझे ग्यारह बजे बुलाया था – उस समय क्यों नहीं आए? उनके कार्यालय की अपनी व्यवस्था थी–पासपोर्ट के आवेदन एक बजे तक ही दिए जाते थे–उसके बाद कर्मचारी दूसरे कार्यो में व्यस्त हो जाते थे–किन्तु फिर भी नाराज मना वह सख्त अधिकारी अपनी बेटी जैसी उस छात्रा के आग्रह को न टाल सका। स्वयं ही फार्म उठाया, उसे स्वयं ही भरा एवं मात्र मुझ से मेरे हस्ताक्षर कराये। शायद खीझ की भी कोई सी लहर उनके मन में उठ रही थी–इसीलिए दो चार बार मुझे कहा भी इतनी जल्दी मैंने आज तक किसी को पासपोर्ट नहीं दिया आपने बहुत ऊँची सिफारिश लगाई है – मैं चुप। भला इसका जवाब भी क्या था?

लगभग एक घंटे बाद दो सील किए हुए लिफाफे श्री सूरी ने मुझे दिए और कहा कि मैं स्वयं डी.आई.जी. एवं सी.आई.डी. कार्यालयों से इन कागजातों की आवश्यक कार्यवाही पूरी करा लाऊँ। मैं भोपाल स्थित डी.आई.जी. एवं सी.आई.डी. कार्यालयों में गया वहाँ भी उन अधिकारियों ने दूसरे दिन वे कागजात ले जाने को कहा किन्तु मेरी प्रार्थना पर सारी आवश्यक कार्यवाहियाँ दोनों कार्यालयों के अधिकारियों ने उसी समय पूरी कर दी। शाम साढ़े चार बजे मैं दोनों लिफाफे लेकर श्री सूरी जी के समक्ष उपस्थित हुआ, और पुनः आवश्यक कार्यवाही के बाद उसी दिन शाम सवा पांच बजे मेरा पासपोर्ट मेरे हाथ में आ गया।

इसके बाद अगले ही दिन मैं ''ट्रेविल ग्रान्ट'' हेतु दिल्ली गया। सर्वप्रथम विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नेशनल एकादमी ऑफ साइन्स, फिर सी.एस.आई.आर. व डिपार्टमेन्ट आफ साइंस एण्ड टेक्नोलाजी भी गया किन्तु कहीं से भी कोई सहायता प्राप्त नहीं हुई। हर जगह एक ही बात कि उनके नियमानुसार कम से कम तीन माह पूर्व आवेदन के साथ अपना शोध पत्र प्रस्तुत करना होता है, विशेषज्ञ यदि उसे स्वीकार करते हैं तभी यात्रा अनुदान दिया जाता है – जबकि मेरे पास बचे थे मात्र सात दिन। प्रथम दिन उक्त जगहों पर घोर निराशा ही मेरे हाथ लगी– दूसरे दिन मैं

''नाइजीरिया एम्बेसी'' पहुँचा न जाने किस प्रेरणा से? वहाँ मैंने उस देश के राजदूत से भेंट करनी चाही किन्तु सम्भव न हो सका। मैं निराश हो लौट ही रहा था कि एक वयस्क लड़की ने वहीं दूतावास में मुझसे पूछा क्या आप सचमुच ही लागोस जाने के लिए उत्सुक हैं? मेरे ''हाँ'' कहने पर उसने उसी जगह अगले दिन प्रातः नौ बजे मिलने को कहा। मैं आश्चर्य चकित सा न जाने किस प्रेरणा के वशीभूत हो दिन भर दिल्ली में यहाँ–वहाँ घूमता रहा व अगले दिन प्रातः ठीक नौ बजे नाइजीरिया दूतावास पहुँचा। सहसा ही उस लड़की से भेंट हुई और उसने मुझे उसी समय दिल्ली–बम्बई–नैरोवी–लागोस व वापसी यात्रा का लागौस–नैरोवी–बम्बई–भोपाल का हवाई टिकट मेरे हाथ में थमा दिया, साथ ही एक ''येलाफार्म'' दिया जिसके माध्यम से अशोका होटल दिल्ली में स्थित पंजाब नेशनल बैंक से आवश्यक राशि डालर में मैं प्राप्त कर सका। प्रभु की इस महती कृपा को मैं समझने में पूर्ण असमर्थ रहा फिर भी लगा मानो मैं किसी अदृश्य शक्ति के हाथों असहाय खिलौना मात्र हूँ– बस मुझे केवल यहाँ वहाँ जाना ही पड़ता था– काम अब अपने आप मानों पूरे होने के लिए मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। इसी क्रम में वीजा प्राप्त करने में भी मुझे मात्र आधा घंटे से ज्यादा समय नहीं लगा।

अब समस्या थी म.प्र. शासन से विदेश यात्रा पर जाने की अनुमति एवं अवकाश लेने की। दिल्ली से लौटकर अगले दिन मैं भोपाल स्थित उच्च शिक्षा संचालनालय गया। उस समय साढ़े तीन बजे दोपहर का समय था। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब सम्बन्धित अतिरिक्त संचालक ने मेरी बात सुनकर मुझे बैठने को कहा व साढ़े चार बजे मुझे विशेष अवकाश व विदेश यात्रा का अनुमति पत्र मेरे हाथ में सौंप दिया। मैं सोचता हूँ, सम्भवतः यह मेरे अकेले का ही कार्य है जो ऐसे मामलों में इस संचालनालय द्वारा इतनी त्वरित गति से अब तक हुआ हो।

उस दिन पाँच मार्च चौरासी का दिन था, जब मैं अपनी अफ्रीका यात्रा पर भोपाल से दिल्ली रवाना हुआ। छह मार्च को दिल्ली में ''येलोफीवर'' का टीका लगवाया एवं हेल्थ बुक प्राप्त की। वहाँ से एअर इंडिया की सम्बन्धित उड़ान से बम्बई नैरोबी–व सात मार्च को लागोस हवाई अड्डे पर पहुँचा। वायुयान में मेरे समीप ही बैठे एक सज्जन श्री गुप्ता ने मुझे सलाह दी थी कि चूँकि आपने अपने लागोस

पहुँचने की सूचना किसी को नहीं दी अतः ज्यादा उचित यही होगा कि आप लागोस स्थित एअर इंडिया कार्यालय जायें व उनके माध्यम से ''याबा'' जो अटलांटिक महासागर में लागोस शहर के समीप एक द्वीप है जिस पर लागोस विश्वविद्यालय स्थित है, जायें। इवाई अड्डे से याबा की दूरी चौदह किलोमीटर की है, किसी भी हालत में अकेले जाने को मेरी सुरक्षा की दृष्टि से उन्होंने मना किया।

वहाँ के समयानुसार मेरा वायुयान दिन के एक बजे लागोस हवाई अड्डे पर पहुँचा था। वायुयान से जब बाहर आया तो मुझे घोर आश्चर्य इस बात का हुआ कि लाउडस्पीकर से बार-बार यह उद्घोषित हो रहा था ''डॉ आर. के. श्रीवास्तव जो सातवीं अन्तर्राष्ट्रीय इकोलाजिकल कान्फ्रेन्स में भाग लेने भोपाल, इंडिया से आये हैं, वे कृपया यहाँ सम्पर्क करें''।

चूँकि हवाई अड्डे से बाहर जाने में अभी कई औपचारिकताएँ शेष थी और उद्घोषणा बाहर से की जा रही थी अतः सम्बन्धित अधिकारी से मैंने निवेदन किया कि मैं अपने सामान की चेकिंग बाद में करा लूंगा मुझे बाहर जाकर उद्घोषणा करने वाले व्यक्ति से सम्पर्क करने की अनुमति दी जाये, क्योंकि मैं ही वह व्यक्ति हूँ जिसके नाम की उद्घोषणा की जा रही है। यह आवश्यक इसलिए भी है ताकि जो भी व्यक्ति मुझे लेने आया हो वह वापिस न लौट जाये। उस अधिकारी ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली और मैं अपना सामान वहीं छोड़ गेट के बाहर सम्पर्क करने बढ़ गया।

बाहर आकर मैनें देखा कि एक महिला एक कक्ष से मेरे नाम की उक्त उद्घोषणा कर रही है एवं एक व्यक्ति जो गुलाबी रंग का कुर्ता पहने था वह दोनों हाथ से एक तख्ती लिए जिस पर मेरा नाम लिखा हुआ था, बाहर निकलने वाले हर व्यक्ति की ओर दिखा रहा था।

जब मैं उस व्यक्ति के समक्ष पहुँचा तो मैने उससे कहा-''मैं ही वह व्यक्ति हूँ जिसका नाम इस तख्ती पर लिखा हुआ है व जिसके नाम की घोषणा की जा रही है।'' उस व्यक्ति ने उस तख्ती को वहीं फेंका और बड़े ही आवेग के साथ मुझे अपनी बाहों में जकड़ लिया-इतनी जोर से आलिंगनबद्ध किया मानों हम एक दूसरे से एक लम्बे अरसे से अलग रहे हों, व देखते ही देखते मेरे दोनों गालों पर चुम्बन

अंकित कर दिए– मैं हक्का–बक्का सा उस आकस्मिक घटना का साक्षी बना रहा। उसको वस्तुस्थिति से अवगत करा कर मैं पुनः चेकिंग आदि की कार्यवाही हेतु हवाई अड्डे पर अन्दर आ गया।

सबसे पहले होनी थी हेल्थ चेकिंग। मेरे सामने एक अन्य सज्जन थे, उन्होंने भी ''येलो फीवर'' का टीका लिया था, वह दिन उनको टीका लगवाने के बाद का नौवाँ दिन था किन्तु अधिकारी का कहना था कि टीका लगने के बाद दस दिन बीत जाने पर ही शहर में प्रवेश करने की अनुमति दी जा सकती है। उसने काफी अनुनय विनय की, अपने कार्य की महत्ता भी स्पष्ट की किन्तु अधिकारी ने रोषपूर्ण ढंग से कहा कि किसी देश का राष्ट्राध्यक्ष भी दस दिन पूरे किए बिना प्रवेश नहीं कर सकता। अतः आपको चौबीस घंटे हवाई अड्डे पर ही व्यतीत करने होंगे।

मैं सारी बातचीत सुन रहा था– यह जान कि टीका लगने के दस दिन बाद ही यात्रा करनी चाहिए– मैं अंदर तक काँप उठा क्योंकि मेरा टीका लगने के बाद का वह मात्र तीसरा दिन ही था। उस व्यक्ति को नियमानुसार चौबीस घंटे हवाई अड्डे पर रूकने का आदेश देते हुए एक अधिकारी उसे एक ओर ले गया। अब बारी मेरी थी।

मैंने काँपते हाथों अपनी ''हेल्थबुक'' सम्बन्धित अधिकारी की ओर बढ़ाई। एक बार भरपूर नजर से उसने निगाहें मेरे चेहरे पर डाली और हेल्थ बुक में दर्ज विवरण देखने लगा। टीका लगाने वाले अधिकारी का नाम, नम्बर, टीकाकरण की तिथि आदि, धीरे–धीरे वह अधिकारी अपने आप ही बोलता रहा– उस समय मेरी हालत यदि मैं ठीक से उपमा दूँ तो उस मासूम मेमने की भाँति हो रही थी जो यह समझ रहा हो कि बस अब हलाल होने का नम्बर आ ही गया है। मैं मन ही मन प्रियतम से प्रार्थना कर रहा था कि प्रभु मुझे सात दिन हवाई अड्डे पर न रूकना पड़े अन्यथा मेरा तो सारा कार्यक्रम ही समाप्त हो जायेगा। इतनी लम्बी यात्रा का कोई अर्थ ही न रह जाएगा। आपने ''रियल हेपीनेस'' वाकयांश के साथ बाबा का वह चित्र तो अवश्य देखा होगा जिसमें प्रियतम की आँखों में प्रेम भरी रहस्यमयी प्रतीति है व साथ ही एक मन भावन हल्की सी मुस्कराहट–जैसे शरारत भरी हो–मुझे मेरे प्रियतम का उन क्षणों में वही स्वरूप स्मरण आ रहा था।

सम्बन्धित हेल्थ अधिकारी ने सारे विवरणों को अच्छी तरह से चेक करने के उपरांत ''हेल्थ बुक'' मुझे वापिस कर दी और मुझे प्रवेश करने की अनुमति दे दी। मेरी आँखें फटी सी रह गई सहसा मुझे विश्वास ही नहीं हुआ, उद्दंड सा मैं वही का वहीं खड़ा रहा और आँख फाड़फाड़ कर उस अधिकारी को अपलक देखता रहा– मेरी यह तन्द्रा तब टूटी जब पुनः उसने जोर देकर कहा– ''प्लीज मूव आन'' (कृपया आगे बढ़िए) मैं मंत्रमुग्ध सा मानों किसी सम्मोहन के वशीभूत हो आगे बढ़ा। शेष सामान को चेक कराने में ज्यादा समय नहीं लगा। सारी औपचारिकताओं को पूर्ण कराने के बाद मैं पुनः बाहर आया। अब तक मेरे स्वागत में आये सज्जन मुझे विश्वविद्यालय तक ले जाने वाली गाड़ी के साथ मौजूद थे, उन्होंने मुझे गाड़ी में बैठाया और हम विश्वविद्यालय की ओर बढ़ चले।

लागोस स्थित विश्वविद्यालय नाइजीरिया का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय माना जाता है। एक अजीब सा रोमांच अभी भी हृदय में धीरे–धीरे सरक रहा था–लागोस शहर की व्यस्ततम सड़कों को जैसे तैसे पार कर लगभग तीन बजे हम विश्वविद्यालय परिसर में पहुँचे। मेरी गाड़ी परिसर में ही जहाँ रूकने की मेरी पूर्व से ही व्यवस्था की गई थी–वहाँ जाकर रूकी। पास ही काउन्टर था जहाँ एक महिला ने मेरा नाम पूछ कर एक लिफाफा दिया जिसमें इस आशय का एक पत्र था कि मेरे दस दिन के दोनों समय के भोजन का भुगतान किया जा चुका है और मुझे कमरा नं. पन्द्रह में रूकना है – मुझे ''ए'' श्रेणी का अतिथि माना गया है।

अपने कमरे में पहुँचकर मैने देखा कि कमरे में आवश्यकतानुसार सभी वस्तुएँ हैं – बम्बई में इसी यात्रा के सिलसिले में मुझे कुछ घंटे पाँच सितारा होटल ''सेन्टेयार'' में रोका गया था – यह कक्ष होटल सेन्टेयार के मुकाबले किसी भी दृष्टि से कम नहीं था। सर्वप्रथम तो मैने दरवाजा बन्द कर प्रियतम की अश्रुपूर्ण नेत्रों से आरती गुनगुनाई, तत्पश्चात हाथ मुंह धोकर कपड़े बदले व इस आशय से कि भोजन के सम्बन्ध मे काउन्टर पर जाकर पूछताछ करूँ–कमरा बंद कर पुनः काउन्टर पर आया।

मैं सम्बन्धित महिला से बात कर रहा था कि थोड़ी ही दूर पर एक ऊँचे पूरे सज्जन सूट पहने हुए अपने सामने खड़े हुए एक व्यक्ति को जोर जोर से डाँट रहे

थे। वे कह रहे थे कि प्लेन एक बजे आ जाता है, इस समय साढ़े तीन बज रहे हैं – जाने वह व्यक्ति कहाँ भटक रहा होगा? मेरे स्पष्ट निर्देश थे कि तुम ठीक साढ़े बारह बजे हवाई अड्डे पहुँच जाना और तुम यहीं हो – डाँट खाने वाला व्यक्ति कह रहा था – ''सॉरी सर'' मै कुछ ज्यादा ही ''पी'' गया था इसलिए समय का ध्यान नहीं रहा।'' उस सज्जन ने पुनः कहा तुम शीघ्रता से वहाँ पहुँचों और लाउडस्पीकर से घोषणा कराओ कि डॉ आर.के.श्रीवास्तव जो भोपाल, भारत से अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेन्स में भाग लेने आए हैं वे यहाँ सम्पर्क करें। जब मैने यह सुना तो चौंका और उत्सुकतावश काउन्टर से चलकर उनके पास पहुँचा और मैने कहा जिनको लाने आप इस व्यक्ति को आदेश दे रहे हैं – वह आर.के.श्रीवास्तव मैं ही हूँ, वे डॉ. एडवर्ड थे – उस सम्मेलन के आयोजक, मुझे देख व मेरे बारे में जानकर एकदम उछल पड़े व आश्चर्यचकित हो मुझसे पूछा ''आप यहाँ कैसे आ गए?'' मैंने बताया एक सज्जन अपनी गाड़ी में मुझे यहाँ लाए – व हवाई अड्डे पर घटित प्रत्येक बात का मैने विवरण दिया तो वे हैरत में पड़ गए। कहने लगे यह कैसे सम्भव हुआ? मैने तो इस व्यक्ति से आपको लाने के लिए कहा था – असल में डाँट खाने वाला व्यक्ति ड्राइवर था जिसको मुझे हवाई अड्डे से यहाँ तक लाने की जिम्मेवारी सौंपी गई थी। डॉ.एडवर्ड हैरान–सम्बन्धित ड्राइवर ग्लानि वश पशोपेश मुद्रा में और मैं भीतर बहुत गहरे कि हिल गया–और तभी मुझे सहसा स्मरण आया, मेरा स्वागत करने वाला व्यक्ति गुलाबी रंग का कुर्ता पहने था – गुलाबी रंग वही रंग जो मेरे प्रियतम का प्रिय रंग रहा है।

मैने एक कथा पढ़ी है लोग कहते है कि वह एक बहुत पहुँचे हुए संत से सम्बन्धित है – कहते है वे संत पूर्व में पुलिस की नौकरी में थे। एक बार उनके अफसर ने कोई महत्वपूर्ण पत्र उन्हें सौंपा और आदेश दिया कि सम्बन्धित आफीसर को यह पत्र शीघ्र पहुँचाओ। चल पड़े ये, ओर भटक गए रास्ते में मन की मस्ती में। कथा कहती है कि कहीं रामायण पर प्रवचन चल रहा था, कुछ समय कथा का सुख लेने ये वहाँ बैठ गए– रमे ऐसे उस कथा रस में, कि जिा कार्य को जा रहे थे–उसका जरा भी ध्यान नहीं रहा–कथा का समापन प्रातः काल हुआ। कथा समाप्ति पर इन्हें होश आया कि ये क्या हो गया? यह जरूरी पत्र तो सम्बन्धित अधिकारी

को कल ही सौंपना था। भागे–भागे उस अधिकारी के समक्ष उपस्थित हुए और देरी से डाक पहुँचाने के लिए क्षमा याचना करने लगे। अब वह अधिकारी हैरान, वह बोला तुम्हारी तबियत तो ठीक है– होश में तो हो। यह पत्र तो तुम कल ही मुझे दे चुके हो– देखो यह पड़ा है मेरे पास मैने पावती भी दी थी–जो तुम्हारे अफसर तक पहुँच गई है। तुम कहाँ से वैसा ही दूसरा पत्र ले आए तुम्हें हो क्या गया है? अब ये क्या कहते–क्या हो गया है? आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी–उसे प्रणाम कर लौटे – और सोचा – यदि मेरा काम मेरे राम को करना पड़ जाय तो ऐसी नौकरी तो गवांरा नहीं और इन्होंने अपने पद से इस्तीफा दे दिया, बाद में वही महान आत्मा एक सुविख्यात संत हुए।

मैं एक क्षुद्र घोर सांसारिक जीव इतनी हिम्मत तो नहीं जुटा सका कि अपनी नौकरी से इस्तीफा दे देता किन्तु बहुत गहरे तक विचलित अवश्य हो गया। आज जब जीवन के इस पड़ाव पर आकर इस संस्मरण को लिख रहा हूँ तो हृदय में बिताये गए जीवन के उन क्षणों का स्मरण कर एक सनसनी सी उत्पन्न हो जाती है – मात्र आँखें ही इस शरीर के अंगों में से थोड़ा सा साथ देती हैं और झर–झर बहने लगती है। यही कारण है कि अब मेर जीवन में न दुख है न सुख, न प्रेम है न घृणा, न जीवन है न मृत्यु बस है तो वर्तमान के क्षण को होश पूर्वक जीने की एक शिद्दत जिसे मैंने प्रियतम की उसी शरारत भरी मुस्कान की एक कोर समझकर सहज ही स्वीकार करना सीखा है। मै तो सुखी और संतुष्ट हूँ।

कहते है एक बार बुद्ध के पास एक नवयुवक आया–कुछ पढ़ा लिखा भी होगा–शरीर से भी स्वस्थ–उसे यह अहं था कि यदि बुद्ध को सचमुच बुद्धत्व की प्राप्ति हुई है तो मेरी काबिलियत उनकी आँखों से छुपी न रह सकेगी। मुझे शीघ्र ही दीक्षित करेंगें एवं अन्य शिष्यों से उच्च स्तर पर स्थान दिया जायेगा। शिष्यों के साथ–साथ रहते जब काफी दिन बीत गए और बुद्ध ने उस पर जरा भी तवज्जो न दी तब तो वह हैरान – उसे शक होने लगा बुद्ध के बोधि को प्राप्त करने के ऊपर। छह माह बीतते बीतते तो उसकी सब्र का बाँध भी मानों टूटने लगा–उसके साथियों ने समझाया बुझाया। एक वर्ष उपरान्त तो उसने खुले आम कहना ही शुरू कर दिया कि बुद्ध को वास्तव में ज्ञान प्राप्त हुआ है इसमें शक है। अरे मुझ जैसे व्यक्ति की काबिलियत

को भी इन्होंने अब तक नहीं पहचाना। व्यर्थ ही मैने अपना समय यहाँ गवाँया। किसी दिन वह वहाँ से जाने ही वाला था कि एक दिन बुद्ध ने उसे बुलाया। इसने सोचा चलो देर से ही सही–आखिर इन्होंने पहचाना तो मुझे, अन्य शिष्यों से श्रेष्ठ तो समझा। कुछ ऐसी ही बातें सोचता वह बुद्ध के समक्ष उपस्थित हुआ। बुद्ध अपने सैकड़ों शिष्यों से घिरे बैठें थे उस समय। बुद्ध ने कहा ''फलाँ आश्रम चले जाओ'' वहाँ के गुरू से कहना कि मेरा निवेदन है कि लोहे की पेटी में जो पारस पत्थर रखा है वह मंजूषा इसके साथ भेज दें। वह शिष्य तो परेशान–उसने सोचा बुद्ध केवल पाखंडी ही नही अज्ञानी भी है। अरे लौह पात्र में भला पारस पत्थर कैसे रखा रह सकता है? लौह तो पारस के सम्पर्क में आते ही स्वर्ण में बदल जाता है? और यदि ऐसा है भी तो या तो लौह गलत अथवा फिर पारस पत्थर नकली। फिर भी सोचा चलो इसकी भी परीक्षा ले लेने में क्या हर्ज है, अतः भारी मन से बुद्ध की आज्ञा मान उस आश्रम गया और वहाँ के प्रमुख को बुद्ध का संदेशा दिया। दूसरे गुरू ने बुद्ध का संदेशा पाया–कुछ मुस्कुराये और फिर इस शिष्य से कहा ''बड़ी दूर से आ रहे हो – थक गए होंगे–भोजन करो–रात्रि विश्राम करो–प्रातः उस लौह मंजूषा को ले जाना जिसमें पारस रखा हुआ है।

अब तो यह शिष्य और भी परेशान–सोचा कैसे हैं ये सभी सन्यासी–क्या पागल हो गए हैं? अरे बुद्ध तो ठीक, मान लेते हैं–परखने की क्षमता नहीं किन्तु यह सन्यासी कैसा जो बुद्ध की बात कही समर्थन कर रहा है? भारी मन से रात्रि विश्राम किया– किन्तु ठीक से नींद भी शायद न आई हो–असल में मन जब शंकाओं से ग्रसित हो जाता है तो मानवीय चेतना पर एक आवरण सा पड़ जाता है, भूख प्यास निद्रा–सभी कुछ बेमानी से होकर रह जाते है। प्रातःकाल उस शिष्य को स्वल्पाहार के उपरान्त उस गुरू ने लोहे की एक छोटी सी मंजूषा दी और कहा कि भगवान बुद्ध को मेरा प्रणाम कहना एवं इस मंजूषा को उन्हें सौंप देना, पारस इसी के अन्दर रखा हुआ है।

हृदय से पूर्ण सशंकित भारी मन से जब उसने उस पेटी को बुद्ध को सौंपा तब भी बुद्ध अपने शिष्यों से घिरे हुए थे। बुद्ध ने उसी शिष्य को ताले की चाबी दी और मंजूषा खोलने को कहा। उसने पेटी को खोला तो आँखें फटी रही गई। उस

पेटिका में पारस पत्थर तो रखा हुआ था किन्तु वह एक बहुत ही झीने कागज से लिपटा हुआ था जिससे उसका सम्पर्क लोहे से नहीं हो पा रहा था – परिणाम यह था कि लौह पेटिका–लोहे की ही रही और पारस उसमें रखा रहा।

असल में हम में और हमारे प्रियतम के मध्य केवल एक झीना सा आवरण है। धुन्ध की एक पतली सी लकीर है– हम चाहें तो अभी टूट सकती है। नहीं तो जन्म जन्मान्तरों तक यह गाथा चलती रह सकती है। हमारे प्रियतम बाबा अभी हैं, इसी समय, इसी जगह, किन्तु हम है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, घृणा, ईर्ष्या, मत्सर आदि के रंग बिरंगे झीने आवरणों से घिरे हैं, वह प्रियतम आता है बार–बार यह देखने क्या अब–अब–अब भी हमने अपना आवरण तोड़ा या नहीं – वह तो प्रवेश करना चाहता है हम में पूरा का पूरा – किन्तु हम तैयार हों।

शबेग़म

तसव्वुर में महफिल सजाते सजाते,
सहर हो गई है तुम्हें आते आते.....

शबे गम कटी किस तरह ये न पूछो,
सितारों से बातें बनाते बनाते.....

संवर जायेगा ये बिगड़ा मुकद्दर,
जरा इक नजर देखना जाते जाते

मरीजे मोहब्बत ने अभी दम है तोड़ा,
बड़ी देर की मेहेरबां आते आते.....

पयाम अपनी कश्ती जो तूफां से खेले,
डूबी वो किनारे लगाते लगाते.....

उन दिनों मैं काफी परेशान था अपने ''हृदय रोग'' के कारण, कठिनाई इतनी होती थी कि चार कदम चलने पर छाती में दर्द होने लगता था और कभी–कभी तो बात करते–करते मुंह खुला रह जाता था। दिल्ली में नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ हार्ट के

डाक्टर भाटिया एवं डाक्टर मोदी ने 'डाइलेटेशन ऑफ हार्ट, कोरोनरी आर्टिरीज डिजीज, एन्जाइना जैसी व्याधियों से ग्रसित होना बता दिया था। इन डाक्टरों का कहना था कि मैं एक माह के अन्दर–अन्दर अपनी 'बायपास सर्जरी' करा लूँ तभी जीवन की ज्योति जारी रहने की सम्भावना है, किन्तु मेरी अपनी विवशता थी, सीमा थी। हालांकि शासकीय सेवा में होने के कारण आपरेशन का खर्च बहुत कुछ अंशों में शासन से प्राप्त हो सकता था किन्तु दिल्ली जैसी जगह में आपरेशन के पूर्व और बाद की भागदौड़ करने वाला परिवार में कोई नहीं था – बच्चे उन दिनों छोटी उम्र के थे, पत्नी के वश की बात नहीं थी और इससे भी बड़ी बात कि मैं स्वयं मानसिक रूप से आपरेशन को तैयार नहीं हो पा रहा था। ऐसी ऊहापोह की स्थिति में दिल्ली से वापिस आ गया।

उन्हीं दिनों भोपाल केन्द्र के सभी बाबा प्रेमियों की इच्छा हुई कि दो दिवसीय ''बाबा प्रेम सम्मेलन'' आयोजित किया जाये, इस सम्मेलन में मेहेराज़ाद से बाबा मण्डली की एक विभूति श्री अलोबा जी भी शामिल हुए थे। एक दिन उचित अवसर पा मैंने श्री अलोबा जी से अपनी व्यथा कही। श्री अलोबा जी ने मुझे कुछ राशि कहीं भेजने के निर्देश देते हुए 'दो पंक्तियों की बाबा प्रार्थना' करने की सलाह दी। अलोबा जी का निर्देश यह भी था कि मैं यह प्रार्थना रात्रि के ठीक बारह बजे किया करूँ और वह भी छह माह तक लगातार। मैंने श्री अलोबा जी के निर्देशानुसार सारा कार्य किया। यह सम्मेलन सन् उन्नीस सौ पचासी के नवम्बर माह में हुआ था और मेरा रात्रि प्रार्थना का क्रम मई छ्यासी के द्वितीय सप्ताह तक चला।

वह महिना मई का था, दिन में आजकल भी भोपाल वासी सूर्य देव की प्रखर किरणों से व्याकुल हो जाते हैं, वह वर्ष भी ऐसा ही था किन्तु रात्रि बड़ी सुहावनी होती है। मैं रात्रि को छत पर सोता था एक तखत पर, स्वभावतः सोते समय बाबा नाम का स्मरण कर लिया करता था। ऐसी ही एक सुहावनी रात्रि, सम्भवतः शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी या चतुर्दशी रही होगी, आदत के अनुसार गहरी नींद में खो गया, रात्रि को एक स्वप्न देखा।

मैंने देखा करूणा के सागर प्रियतम बाबा मेरे समक्ष खड़े हैं वही विशाल मुख मण्डल, वही प्रेम भरी आँखे एक टक मुझ पर दृष्टि गड़ाए हुए, और हाथ के इशारे

से मानों मुझसे कुछ कह रहे हैं। मैं कुछ भी समझने में असमर्थ रहता हूँ, बार–बार वे संकेत से मुझसे कुछ कहते है किन्तु मैं कुछ भी समझ नहीं पाता। उसी समय कुछ अहसास सा होता कि बाबा किसी दावा के संबंध में मुझसे कह रहे है किन्तु फिर भी मैं कुछ समझ नहीं पाता। यह क्रम काफी दर तक चलता है और अब मैं देखता हूँ कि प्रियतम के चेहरे पर एक झल्लाहट उभर आई, पेशे से शिक्षक होने के नाते उसकी उपमा मैं कुछ ऐसी दे सकता हूँ कि मान लिजिए किसी छात्र को आप खूब स्नेह करते हैं, उसे बेहद चाहते भी हैं किन्तु पढ़ाते समय बार–बार समझाने के बाद भी यदि वह छात्र कोई छोटी सी बात नहीं समझ पाता तो जो झल्लाहट आपके चेहरे पर उभर आयेगी ठीक वैसी ही स्थिति मैंने बाबा के मुख मंडल पर परिलक्षित होते हुए देखी। जब बड़ी देर हो जाती है तो कहीं से एक आवाज के साथ बायोकेमिक की एक दवा का नाम मुझे सुनाई पड़ता है जब मैं उस दवा को स्पप्न में ही बाबा के समक्ष बोलता हूँ तो बाबा के चेहरे पर एक हल्की सी मुस्कान उभर पड़ती है और बाबा अदृश्य हो जाते है, स्वप्न टूट जाता है, नींद खुल जाती है प्रातः के लगभग साढ़े चार बजे का समय होता है, मानस के सारे तार झनझना उठते है आँखों ही तो है जिसके माध्यम से वह अपना अतिरेक चाहे वह दुख का हो अथवा सुख का, व्यक्त कर पाता है, प्रेमाश्रु की स्थिति में ही मैंने बाबा की आरती मन ही मन गाई और चुपचाप अपनी दैनिक चर्या में लग गया।

स्नान करने के पश्चात् प्रतिदिन की भाँति अब अपने पूजाघर मुें बाबा के चित्र के सामने बैठा तो स्वप्न में बाबा द्वारा बताई गई बायेकेमिक की उस विशेष दवा को भी (जो मेरे पास पहले से ही थी, असल में बायोकेमिक दवाओं का उपयोग सन् उन्नीस सौ छ्यासठ से ही करता आया हूँ) प्रियतम के चित्र के समक्ष रख ली। अपने दैनिक क्रम की समाप्ति पर मैने प्रार्थना के साथ बाबा से यही कहा 'प्रभु यदि आपकी इच्छा है कि अभी आपकी सृष्टि के वैभव को और देखँ तो मेरी ये समस्त व्याधियाँ मात्र इस दवा से ही ठीक हो जाए अन्यथा जैसी आपकी मर्जी और दवा को उसी समय से नियमित रूप से मैंने आरम्भ कर दिया।

उसी दौरान जिज्ञासा यह हुई कि वास्तव में हृदय के अन्दर इस दवा का कुछ असर हो रहा है अथवा नहीं – यह जानने के लिए भोपाल के ही एक प्रख्यात हृदय

विशेषज्ञ के पास मैं गया। उनकी फीस आदि देने के बाद उन्होने मेरा पूरा चेकअप किया। इसी क्रम में इकोकार्डियोलाजी भी शामिल थी जिससे हृदय की धड़कन, खून का प्रवाह मरीज स्वयं टेलीवीजन जैसे पर्दे पर देख सकता है। बीमारी के अनुरूप डाक्टर ने दवा लिखी और मुझे एक माह पश्चात पुनः मिलने को कहा। मै तो प्रियतम की बताई हुई दवा ही खाता रहा, कुछ समय बाद मुझे स्वयं भीतर से ऐसा लगने लगा जैसे खोई शक्ति मुझमें वापिस आ रही हो। धँसी हुई आँखें ऐसा लगा मानों अपनी मूल अवस्था में आ गई है, धीरे–धीरे आधा किलोमीटर, फिर एक किलोमीटर तक चलने लगा, किन्तु प्रतिमाह डाक्टर के पास अवश्य जाता रहा। सांसारिकता से बंधा बेचारा डाक्टर तो आज भी यह समझ रहा होगा कि उसकी दवा से ही मैं ठीक हो रहा था। ठीक पाँचवे माह बाद एक बार मैंने पुनः उस विशेषज्ञ से प्रार्थना की कि वह मेरे हृदय की अन्दरूनी स्थिति एक बार पुनः पर्दे पर देख कर निर्णय ले। अगले दिन जब उसने मेरे हृदय का रक्तसंचार पूर्ण सामान्य पाया तो खुशी से उछल पड़ा और मुझे बधाई देते हुए कहा ‘‘अब तो खून का संचार बिलकुल सामान्य गति से हो रहा है, भई मैं आपका इसलिए कृतज्ञ हूँ कि आपने मुझे सहयोग दिया, बहुत कम मरीज ऐसे होते है जो डाक्टर को सहयोग देते है– अब आप बिलकुल ठीक हो रहे हैं।

उसने पुनः कुछ दवायें लिखी– और एक माह और खाने के लिए कहा व एक माह बाद पुनः मिलने को कहा उसके बाद मैं आज तक उस विशेषज्ञ से नहीं मिला, हाँ बाबा की बताई दवा नियमित रूप से अवश्य लेता रहा।

अब जीने की ललक पुनः मचलने लगी थी, घर से बाहर निकलने पर जब ऊपर सिर उठाकर देखने में डर सा लगता था वह दूर हो गया था, हिम्मत के साथ बात करने की स्थिति पुनः लौट आई थी तो मन में एक नया विश्वास सा घर कर गया था। इसी दौरान स्वाभाविक ही था कि मैं बाबा की करूणा के प्रति अगाध श्रद्धा से भर उठा, अतः मैने स्वयं ही एक निश्चित संख्या में प्रियतम के पावन नाम का लिखित जाप भी प्रारंभ कर दिया था इस प्रकार एक वर्ष समाप्त हुआ।

पुनः अगले वर्ष का माह मई, अग्नि वर्षा से त्रस्त भोपाल वासी, रात्रि बड़ी सुहावनी, चार इमली, भोपाल का वही निवास, वही छत, वही तखत–वैसी ही शुभ्र

चाँदनी वाली रात्रि, नींद में डूबा हुआ देखता हूँ स्वप्न में, मेरे प्रियतम अपनी मंद – मंद मुस्कराहट के साथ प्रगट हुए है, आँखों में वही अगाध प्रेम, मैं एक टेबिल पर पड़ा हुआ हूँ, एक चाकू से प्रियतम मेरी छाती फाड़ते हैं, हृदय भाग को अपने हाथों में लेकर चाकू से माँस के एक लोथड़े को काटकर वहीं छत पर फेंक देते है और वक्ष के कटे हुए भाग को दोनों ओर से अपने हाथों में समेटते हुए पास लाते हैं, मेंरी पीठ के नीचे से निवाड़ (जो पलंग पर बुनी जाती है) की एक पट्टी पीठ के नीचे से डालकर उसके दोनों सिर अपने हाथ में लेकर वक्ष पर एक गाँठ बाँधते है और इतनी जोर से निवाड़ की पट्टी को खींचते है कि एक चीख के साथ मेरी नींद टूट जाती है, सारा शरीर पुनः झनझना जाता है और मैं पूर्ण होश में आ जाता हूँ, सहसा आसमान की ओर नजर जाती है देखता हूँ कि ठीक मेरे ऊपर तेज प्रकाश का एक बड़ा सा आवरण छाया हुआ था जो क्रमशः स्वयं में सिमटता है – सिमटते हुए मात्र एक प्रकाश का गोल पुंज सा बनता है और अदृश्य हो जाता है – पास में घड़ी रखी हुई थी समय देखता हूँ, प्रातः के ठीक साढ़े चार बजे। एक बार उस दिन पुनः बरबस ही अश्रुधारा प्रवाहित हो उठती है। रोम रोम रोमांचित हो उठता है। छत पर देखता हूँ, माँस को कोई टुकड़ा पड़ा हुआ नहीं मिलता, खून का एक धब्बा भी नहीं। वक्ष प्रदेश भी पूर्ण सही सलामत कहीं से कटा फटा नहीं, उस स्थिति को व्यक्त करने, शब्द बिचारे बौने पड़ रहे हैं। आज इस क्षण भी जब ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ, उस स्थिति को स्मरण कर बाबा के पावन कर कमलों के संस्पर्शित यह हृदय बस यही कह पा रहा है, ''हे दया के सागर – हे करूणा निधान–तुम मात्र तुम ही हो, तुम करूणा के सागर हो।''

प्रभू की इस महती कृपा के कुछ माह बाद ही मै एम.एस.सी. के छात्रों के साथ ''बाटनीकल एक्सकरशन'' में नैनीताल गया। नैनीताल हिमालय की गोद में बसा हुआ एक बड़ा ही प्यारा सा हिल स्टेशन है और वहीं है ''चाइनापीक'' नैनीताल की सबसे ऊँची चोटी, मैं, जिसको डाक्टरों ने कितनी भयावह हृदय की बीमारियों से ग्रसित घोषित किया था, बिना किसी कठिनाई के चाइनापीक पर चढ़ गया और सुविधापूर्वक बिना किसी कष्ट के नीचे भी लौट आया। बाबा की शान में गाई गई एक गजल की पंक्ति का स्मरण करते हुए

शबे गम कटी किस तरह ये न पूछो.....

मित्रों मैंने कहीं पढ़ा था– एक अंधा भिखारी भिक्षा मांगते मांगते एक दिन एक मंदिर के दरवाजे पर पहुँच गया। चूँकि अंधा था इसलिए उसे यह ज्ञान न हो सका कि यह किसी गृहस्थ के घर का दरवाजा नहीं, यह तो मंदिर का दरवाजा है। आते जाते लोगों में से किसी आँख वाले ने कहा ''अरे बाबा, भिक्षा ही मांगनी है तो किसी गृहस्थ के दरवाजे पर जाकर दस्तक दे, यह तो मंदिर का दरवाजा है। यहाँ तुझे कौन भिक्षा देगा। उस भिखारी ने जो जवाब दिया वह बड़ा ही काबिले तारीफ था। उस भिखारी ने कहा भूल से ही सही–यदि भिक्षा मांगते–मांगते मंदिर के दरवाजे पर ही आ गया हूँ तो जो कुछ पाने जैसा है वह यहीं से प्राप्त होगा। अरे, गृहस्थ का दरवाजा तो तन की भूख मिटाने के लिए अन्न देता, यहाँ तो आत्मा की भूख मिटाने का साधन उपलब्ध है, भूल से ही सही जब आ ही गया हूँ तो यहाँ तो आत्मा को ढकने के वस्त्र उपलब्ध होंगे, गृहस्थ का घर तो तन ढकने के लिए ही वस्त्र दे सकता था, और हाँ यदि यहाँ से, मंदिर के इस दरवाजे से कदाचित खाली हाथ जाना पड़ा तो संसार में अब ऐसा कोई भी दरवाजा नहीं है जहाँ से कुछ प्राप्त हो सके।

हमारे जीवन में चाहे जैसे भी संयोग जुड़ा हो–प्रियतम बाबा के श्री चरणों का सान्निध्य प्राप्त करने में – रे मेरे मन! यदि भूल से ही सही जब तू प्रियतम के दरवाजे पर अकस्मात ही याचक बन संयोग वश पहुँच गया है तो तुझे यहाँ से तेरी आत्मा का भोजन व आत्मा के वस्त्र प्राप्त हो सकेंगे–अन्यत्र कहीं से नहीं–कहीं से भी नहीं।

उनसे जब दिन की बात होती है

अक्टूबर सन् उन्नीस सौ छ्यासी की बात, मैं उन दिनों भी भोपाल में ही था। एक दिन अचानक मुझे एक आमंत्रण पत्र प्राप्त हुआ, जिससे ज्ञात हुआ कि बोहानी ग्राम में प्रियतम मेहेर बाबा के प्रेमियों ने एक प्रेम सम्मेलन आयोजित किया है। आमंत्रण पत्र पर बाबा पर प्रमुख वार्ता देने हेतु मेरा नाम छपा हुआ था। इसके पूर्व मुझे बोहानी ग्राम का कोई पता भी न था, साथ ही इस पर भी आश्चर्य हुआ कि बिना मुझ से पूछे आयोजकों ने प्रमुख वक्ता के रूप में मेरा नाम कैसे छाप दिया? इस आयोजन की सारी रूप रेखा जवाहर लाल नेहरू कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर के तत्कालीन कुलपति डॉ. एस. वी. आर्या की थी। श्री आर्या के निर्देशन में ही सारी तैयारी की गई थी। बोहानी में ही कृषि विभाग में कार्यरत श्री इरशाद भाई थे जो स्थानीय स्तर पर आयोजन के प्रमुख कर्ता–धर्ता थे। मुझे हैरत इस बात पर हुई कि जिस किसी ने भी मेरे लिए इस उत्तरदायित्व को सौंपा है और बिना मुझसे पूर्व अनुमति लिए मेरा नाम छापा है, निश्चित ही उसके दिल में कितना गहरा विश्वास मेरे प्रति रहा होगा, वह कितना अपना होगा कि अनुमति लेने जैसी औपचारिकता को भी उसने आवश्यक नहीं समझा और इस विश्वास के साथ कि मैं आयोजन में शामिल होऊंगा ही– उन्होंने नाम छपवा दिया। मैने मन में सोचा कि उनके इस विश्वास की रक्षा करना मेरा कर्तव्य हो जाता है अतः मैने अपने पहुँचने की स्वीकृति भेज दी।

बोहानी मध्यप्रदेश में गाडरवाड़ा के समीप एक ग्राम है जो नरसिंहपुर जिले के अन्तर्गत आता है। नियत दिनांक को मुझे भोपाल के एक अनन्य बाबा प्रेमी श्री डी. वाई.नाफड़े के परिवार के साथ कार्यक्रम में ट्रेन से प्रस्थान करना था, किन्तु किसी कारण वश मैं नाफड़े साहब के साथ न जा सका। किन्तु चूँकि मन में संकल्प ले चुका था अतः मैं अकेला ही भोपाल से नरसिंहपुर जाने वाली बस में सवार हुआ। मुझे बताया गया था कि यह बस ग्राम बोहानी से गुजरती हुई आगे नरसिंहपुर जाती है।

घर से चलते समय मैं कुछ अवस्वस्थ था और उस दिन वर्षा की बौछारें भी पड़ने लगी थी किन्तु मुझे तो सम्मेलन में जाना ही था अतः चल पड़ा। अपने स्वास्थ्य की दृष्टि से बस यात्रा मुझे कष्टकारी प्रतीत हो रही थी किन्तु प्रियतम बाबा के जीवन के विभिन्न पहलुओं पर मन ही मन विचार करता मैं अपने में ही मस्त था। शाम पाँच बजे के लगभग कुछ भूख सी लगी किन्तु बाजार की हर वस्तु के गुण–अवगुणों पर मैं विचार करता और बस आगे बढ़ जाती – मैं अपनी आदत वश कहीं कुछ भी खा न सका।

चूँकि उन दिनों मैं अपने स्वास्थ्य की वजह से हर खाने वाली वस्तु पर यह विचार अवश्य करता था कि कौन सी वस्तु मेरे शरीर को हितकर होगी और कोन अहितकर, इसलिए अपने खाने का चुनाव मैं बड़ी सावधानी पूर्वक किया करता था।

उस समय शाम के लगभग सात बज चुके थे, वर्षा की बूँदे कुछ तेज हो गई थी, चारों ओर अंधेरा छा रहा था, अपरिचित गाँव था। वास्तव में सच तो यह भी है कि ग्राम में सम्मेलन किस जगह आयोजित किया जा रहा है– मुझे इसका भी ज्ञान नहीं था, कारण कि चलते समय आमंत्रण पत्र घर पर ही रह गया था। स्थान का नाम तो उसमें ही लिखा था अपनी इस गलती पर पछतावा भी हो रहा था– साथ ही भूख भी बढ़ रही थी।

लगभग साढ़े सात बजे शाम को सहयात्रियों से ज्ञात हुआ कि बोहानी ग्राम आ गया है किन्तु मुझे पूर्ण अंधेरा ही चारों ओर दिख रहा था कि सहसा ही परिचालक ने अपनी सीटी बजाई और बस एक झटके के साथ थोड़ी देर बाद खड़ी हो गई परिचालक ने भी आवाज दी – ग्राम–बोहानी मेरी ओर देखा और मैं सड़क पर उतर पड़ा – बस अपने गन्तव्य की ओर बढ़ गई।

अभी मैं बस से उतरा ही था कि कुछ ही क्षणों में एक व्यक्ति हाथ में जलती हुई लालटेन लिए हुये आया और स्वयं ही मुझ से पूछा कि आपको कहाँ जाना है–? मैने बताया मुझे ग्राम बोहानी में आयोजित होने वाले बाबा के कार्यक्रम में शामिल होना है – मैं भोपाल से आ रहा हूँ उसने कहा कि वह स्थान तो यहाँ से जरा दूरी पर है, आप मेरे साथ चलिए। बरसते हुए पानी में और अंधेरी रात्रि में उस व्यक्ति के साथ जाने के अलावा मेरे पास कोई विकल्प नहीं था। मैं उसके साथ

ऊबड़–खाबड़, कीचड़ से लथपथ रास्ते पर चल पड़ा। अब भूख ने और जोर मारा और मैने मन में सोचा आज यदि घर पर होता तो मूंग की दाल, व दूध में रोटी मीड़ कर खाता। मेरे हिसाब से उस दिन मुझे यही भोजन सर्वाधिक उपयुक्त लग रहा था। सड़क से हम लोग एक किलोमीटर से ज्यादा रास्ता तय कर चुके थे किन्तु ग्राम का कोई ठौर ठिकाना नहीं दिख रहा था।

इधर दूध रोटी व मूग की दाल खाने की इच्छा और भी बलवती होती जा रही थी। लगभग एक किलोमीटर चलने के उपरान्त उस व्यक्ति ने एक अन्य व्यक्ति के दरवाजे पर जाकर दस्तक दी, वे सज्जन बाहर आये। उन्हें यह कहते हुए कि ये साहब भोपाल से आए है, इन्हें मेहेर बाबा के सम्मेलन में शामिल होना है – सड़क पर खड़े थे, मैं इन्हें आपके पास लाया हूँ, आप इन्हें नियत स्थान पर पहुँचा दें और वह व्यक्ति आगे बढ़ गया। यह घर किन्हीं पंडितजी का था, उन्होंने बड़े ही प्रेम से मुझे अन्दर बुलाया और कहा अभी मैं किसी के साथ वहाँ ''नवोदय विद्यालय'' जहाँ बाबा का कार्यक्रम आयोजित होना था आपको भेज देता हूँ। पहले आप हाथ मुँह धो लीजिए, थक गए होंगे। उनके आग्रह को मैं टाल न सका। मैंने हाथ मुँह धोया। मैं बैठा ही था कि उन्होंने आग्रह किया कि ज्यादा अच्छा ये हो कि आप भोजन कर लें तब जायें। मैने निवेदन किया कि आयोजन स्थल पर ही सारी व्यवस्था होगी आप मुझे वहाँ भेज दें। किन्तु उन्होंने कहा ठीक है वहाँ सारी व्यवस्था होगी किन्तु आप अब यहीं से भोजन करके जायें। बड़ी विनम्रतापूर्वक किये गये उस अपरिचित के इस प्रेम पूर्ण आग्रह को मैं फिर न टाल सका और मैने भोजन की स्वीकृति दे दी।

अब मेरे चौंकने की बारी थी – मैंने देखा कि मेरे लिए भोजन में रोटी के साथ मूंग की दाल परोसी गई है। मैं विस्मित हो उस व्यक्ति का मुँह ताकने लगा कि तभी उसका लड़का एक कटोरे में दूध लाया। इन सज्जन ने बड़े ही भक्ति भाव से मेरे समीप बैठते हुए, कुछ रोटियाँ दूध में मीड़कर डाली और कहा–यही है आज इसे स्वीकार करें। मेरा तो रोम–रोम आवेश से भर उठा था, गला रूँध सा रहा था आँखों में अश्रु भर आये, किन्तु लेम्प के उजाले में सम्भवतः वह गृहस्वामी मेरी हालत को नहीं आँक पाए। मुझे खूब स्मरण है उस दिन उस मूंग की दाल का स्वाद ही कुछ निराला था–तो क्या प्रियतम बाबा ने मेरे मन में उठ रही भूख की चाहत की

उस तरंग को भी जान लिया था? साथ में ये भी पूरा पूरा ख्याल रखा कि दूध में रोटी को मीड़कर भी खिलाना है – क्या व्यवस्था है उस कृपा निधान की!! ब्रह्माण्ड का नियंता–किसी अपने प्रेमी का इस तरह इतने गहरे स्तर पर बारीकी से ख्याल रखे, बंधुओं यह प्रियतम बाबा से ही सम्भव है।

कितने प्रेम और आग्रह से अपने हाथों से स्वयं परोसते हुए उस सद्गृहस्थ ने उस शाम मुझे भोजन कराया था और वह भी – वह भोजन जो मेरी उस दिन पाने की इच्छा थी – मैं उस परमानन्द की अनुभूति का एक साक्षी हूँ शब्दों को भाषा की पोशाक पहना कर भी उस अद्वितीय अनुभव को व्यक्त करने में असमर्थ हूँ संभव है शब्द ही असमर्थ है– उस विशेष स्थिति को आकार देने में।

भोजन कराने के उपरान्त उन्होंने अपने परिवार के किसी सदस्य के साथ मुझे प्रियतम बाबा के सम्मेलन स्थल पर पहुँचाने की व्यवस्था कर दी। मैने सुना है कोई एक राजा जब भी अपनी विजय यात्रा पर जाता तो विजय हासिल करने के उपरान्त अपनी रानियों को यह संदेश भिजवाता कि खुशी के इस मौके पर किस रानी को क्या उपहार लाऊँ? कई पत्नियाँ थी उस राजा की। विजय की खुशी में एक बार किसी रानी ने कहा हीरों से जड़ा हार, किसी ने कोई वस्त्र, किसी ने कोई अन्य बहुमूल्य रत्न जड़ित आभूषण लाने का सन्देशा भिजवाया। किन्तु एक रानी ने मात्र यही कहला भेजा ''बस आप आ जाओ–वही मेरे लिए सब कुछ है।'' नियत समय पर राजा लौटा और जिस रानी की जो जो चाहत थी वह उन्हें भिजवायी और स्वयं उस रानी के कक्ष में चला गया जिसने संदेशा भेजा था– ''बस आप आ जाओ–आप ही मेरे लिए सब कुछ है।'' अन्य रानियाँ हैरान कि राजा ने ऐसा क्यों किया? अरे, उसकी तुलना में हम ज्यादा सुन्दर, रूपवती और यौवन से भरपूर हैं, उसकी तो उम्र भी ढल रही है – राजा उससे ही केवल क्यों मिले?

राजा ने सीधा साधा जवाब दिया, आप लोगों की जो–जो चाह थी– मैंने उसे आपको दिया किन्तु इस रानी ने केवल मुझे पाने की अभिलाषा की थी उसकी चाह केवल मुझे ही पाने की थी अतः मै उससे मिला–मेरेा तुम्हारा नाता वस्तुओं का था–तुम्हें वस्तुएँ मिली–उसका मेरा नाता हृदय का नाता है अतः उसने जो मांगा उसे मैं दे रहा हूँ।

काश! मैने भी सम्भावनाओं से भरे हुए उन क्षणों में दूध-दाल के चक्कर में न पड़त हुए स्वयं ''हुजूर'' का पाने की इच्छा की होती।

सागर की गहराई को नमन करूं,
या नभ की उँचाई का वन्दन।
गौरव गरिमा के सम्मुख प्रियतम,
फीका पड़ता हर अभिनन्दन।।

तेरे सिवा जहाँ में

उन दिनों मैं भोपाल में था। सन् उन्नीस सौ नब्बे की बात यानि की भोपाल केन्द्र द्वारा प्रेम सम्मेलन की आयोजना का अगला वर्ष। केन्द्र के सभी बाबा प्रेमियों की उस वर्ष यह इच्छा हुई कि इस वर्ष परिवार में ही वृहद स्तर पर प्रभु के कार्यक्रम आयोजित किए जायें। कार्यक्रम की रूप रेखा तैयार की गई। नवम्बर माह की चौदह तारीख को श्री नाफड़े जी के यहाँ एक बड़े स्तर पर कार्यक्रम हुआ और पन्द्रह तारीख को मेरे यहाँ प्रियतम के प्रेम की प्रेमियों ने रसधार बहाई। मेरे परिवार में पत्नि और तीनों बेटियों ने बैठक के कमरे में एक दीवाल के सहारे प्रियतम के चित्र को बड़े ही सुन्दर ढंग से सजाया। व्यवस्था कुछ ऐसी बन पड़ी की बाबा का वह दर्शन कम से कम मुझे तो दिव्य दर्शन सा बन गया। चित्र के चारों ओर फूलों की सजावट अकस्मात ही कुछ ऐसी बन गई कि लगा मानों प्रियतम बाबा स्वयं ही आकर विराजमान हो गए हैं। श्री नाफड़े जी का पूरा परिवार, श्री शंभूलिंगम जी परिवार सहित, श्री जोगदंड जी सपरिवार, श्री सोनी जी (अब स्व.) परिवार सहित आदि सभी बाबा प्रेमियों का जमघट अपने पूरे उत्साह से शामिल हुआ। श्री मुकेश कश्यप, श्री धर्मेश और उनके साथीगणों ने अपने मधुर कंठ से भजन, गीत, गजलों का मधुर गायन प्रियतम को सुनाया। इस अवसर पर श्री किरण नाफड़े एवं श्री कुमार नाफड़े

ने बाबा की एक फिल्म की भी व्यवसाि की थी, उसे भी प्रदर्शित किया गया–रात्रि लगभग ग्यारह बजे तक कार्यक्रम चलता रहा।

अगले दिन मेरी इच्छा हुई कि बाबा के चित्र और उसके चारों ओर की सजावट को यथावत रखा जाय, इसलिये मैंनें उसे ज्यों का त्यों रहने दिया। अपने कार्यक्रमानुसार मैं यथावत कालेज गया। वहाँ से मैं शाम साढ़े चार बजे लौटा। घर पहुँचा ही था कि पीछे से श्री दुबे जी जो भोपाल में साईन्स हाउस के मालिक हैं व उनके साथ श्री काले जी जो भोपाल में ही एक अधिकारी के पद पर कार्यरत हैं–आ गये। सप्रेम जय बाबा के साथ–मैंने उनसे बैठने का आग्रह किया।

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि श्री दुबे जी जबलपुर में श्री अमिय हाज़रा के सान्निध्य में कभी आये थे। कुछ समय पूर्व श्री हाज़रा जी जबलपुर से भोपाल आये थे व स्व. श्री सोनी जी कार्यपालन यंत्री थे और उन दिनों बैरागढ़ भोपाल में रहते थे। श्री हाज़रा जी का सभी बाबा प्रेमी सान्निध्य चाहते हैं अतः श्री सोनी जी के निवास पर एक दिन सभी भोपाल के बाबा प्रेमी एकत्रित हुए–श्री हाज़रा जी ने, मुझे स्मरण है, उस दिन बड़ी ही तन्मयता से ''पीले पीले तू मेहेर नाम का प्याला'' यह भजन सुनाया था। चर्चा के क्रम में कुछ मैं भी बाबा के संबंध में बोला था– श्री दुबे जी से यहीं मेरा पहला परिचय हुआ था। अगले दिन श्री दुबे जी ने प्रोफेसर कालोनी स्थित अपने निवास पर बाबा प्रेमियों का एक आयोजन किया। उसमें मेरी बाबा पर वार्ता रखी गई थी। मैं तो आज तक भी नही समझ सका, कि उनके निवास पर आयोजित मेरी वार्ता में श्री दुबे जी को जाने कौन सी बात गहरे तक स्पर्श कर गई कि उन्हें यह भ्रम सा हो गया कि मैं बड़ा गहरा बाबा प्रेमी हूँ। श्री काल जी से उनके कार्यालय में मैं पूर्व में एक दो बार अवश्य मिला था– किंतु बाबा के संदर्भ में कदापि नहीं और यह भी सच है कि श्री काले जी ''बाबा'' के बारे में अनभिज्ञ थे।

कुशलोपरांत जब मैने श्री दुबे जी एवं श्री काले जी से उनके आने का मकसद पूछा–तो श्री काले तो कुछ नहीं बोल सके, बात प्रारंभ की श्री दुबे जी ने। उन्होंने बताया कि ये श्री काले जी हैं, इनका उनतीस वर्षीय छोटा भाई कल दोपहर के एक बजे से लापता है। बात को विस्तार पूर्वक बताते हुए श्री काले ने कहा– ''मेरा छोटा

भाई अपनी पत्नि के साथ कुछ दिनों से यहाँ मेरे पास रह रहा था। उसकी पत्नि को डिलेवरी होने के कारण कल महाराणा प्रताप नगर स्थित प्रसूतिगृह में भरती कराया है। घर में मां है, कल एक बजे प्रसूतिागृह से भाई बाहर आया और अब तक उसका पता नहीं है – कहाँ गया ?

कल से अभी तक लखनऊ, दिल्ली आदि जगह जहाँ–जहाँ भी रिश्तेदार हैं हर जगह टेलीफोन से उसके बारे में पूछताछ कर ली, किंतु कहीं उसका कोई पता नहीं है, पिताजी तो अब है नहीं, मां हैं–वे रो–रोकर पागल हुई जा रही हैं'' – श्री काले ने एक बात और कही कि ''मैं इस बात से भी अत्यधिक विचलित हुआ जा रहा हूँ कि चूँकि छोटे भाई की पत्नि को बच्चा होने वाला था अतः कहीं मां अपने मन में यह न सोच रही हो कि ऐसे समय में होने वाले खर्च के कारण मैंने अपने छोटे भाई से कुछ कहा सुना हो जिसकी वजह से वह घर छोड़ कर भाग गया हो जबकि विश्वास कीजिए सर, ऐसी कोई बात नहीं है।''

मैंने श्री दुबे जी से कहा – भाई ऐसी स्थिति में तो आपको पुलिस स्टेशन जाकर रिपोर्ट दर्ज करानी चाहिए, बताइये भला मैं क्या कर सकता हूँ? मेरी बात सुनते ही तपाक से श्री दुबे जी बोले ''आपके पास इसलिए आया हूँ कि आप बाबा से प्रार्थना कर इनके भाई को वापिस बुला दें''। मैं श्री दुबे की बात सुन अवाक रह गया– मैने तत्क्षण उनसे कहा, भाई परमात्मा और आप अपने बीच मुझे एक एजेंट के रूप में क्यों मान रहे हो, मैं क्या कर सकता हूँ? हाँ जब आप यहाँ आये ही हैं तो कल मेरे यहाँ बाबा का एक आयोजन हुआ था, अभी भी उनका दरबार यथावत है आप जाकर बाबा के समक्ष प्रणाम करें और अपनी प्रार्थना उनसे करें यदि बाबा की इच्छा हुई तो भाई स्वयमेव ही घर आ जायेगा।

मेरा ऐसा कहने पर दोनों ने झुक कर बाबा के चित्र के समक्ष नमन किया और अपनी प्रार्थना बाबा के समक्ष कही। उसी क्षण जाने क्यों और कैसे (इसका राज मैं आज तक भी नहीं समझ पाया हूँ) मेरे मन में एक ख्याल आया और मैंने श्री काले से पूछा कि क्या आपके घर आपके भाई का कोई वस्त्र है जो वे पहिनते हों ? श्री काले ने कहा हाँ जिस कमरे में वह रहता था उसमें उसके सोने, पहिनने के

सभी वस्त्र पड़े हैं – मैंने कहा उसका कोई वस्त्र आप ले आयें, श्री काले कुछ ही समय में अपने भाई की एक कमीज व एक तौलिया लेकर वापिस आ गये।

मैं उनके भाई के तौलिया को लेकर अपने पूजागृह में आया और प्रियतम के चित्र के समक्ष जो अगरबत्ती जलाया करता था, उसकी थोड़ी सी विभूति लेकर तौलिया के एक छोर पर बांध दी। मैंने वह तौलिया श्री काले जी को देते हुए कहा– इसे ले जाओ और जहाँ आपका भाई सोता था वहाँ रख देना, देखना कल तक तुम्हारा भाई अपने आप ही सकुशल वापिस आ जायेगा, दोनों लोगों ने प्रियतम को पुनः नमन किया और चले गये।

यहाँ एक बात मैं बड़ी ही विनम्रता से अपने पाठकों के समक्ष स्पष्ट करना चाहता हूँ कि मैं वास्तव में स्वयं चकित हूँ कि मैंने ऐसा श्री काले को करने को क्यों कहा? न तो मुझे प्रियतम ही सिद्ध हैं और न ही कोई तंत्र या मंत्र। मैं एक पूर्ण गृहस्थ हूँ और आम लोगों की भांति अपना जीवन यापन करता हूँ किंतु न जाने किस मनोदशा के वशीभूत हो मैंने यह उनसे कहा और किया। उनके जाने के बाद कुछ समय तक मैं किंकर्तव्यविमूढ़ सा बैठा रहा– मेरी पत्नि जो यह सब देख रही थी, उन्होंने भी कहा यह क्या करते है आप? क्यों व्यर्थ में उनको ये सब करने को कहा आदि आदि। मैं भला क्या उत्तर देता– स्वयं भी तो नहीं जानता था कि मैंने ऐसा क्यों किया?

अगले दिन प्रियतम की उस झाँकी को वहाँ से हटाने को मन नहीं हुआ अतः ज्यों की त्यों व्यवस्था रही। प्रतिदिन की भाँति उस रोज भी मैं कालेज गया और जाने कैसे यह ''काले प्रसंग'' मन से बिलकुल दूर हो गया, स्मरण भी रहा कि कल कोई ऐसी घटना घटी थी। शाम को साढ़े चार बजे घर वापिस आया, जूते के फीते खोल रहा था कि दरवाजे की घंटी बजी– वैसी ही अवस्था में जाकर दरवाजा खोला तो देखा कि श्री काले जी हाथ में मिठाई का दोना लिए अश्रुपूरित नेत्रों से खड़े हैं – मुझे देखते ही बोले सर! मेरा भाई अभी लौटकर घर वापिस आ गया है, सबसे पहले आपको ही मैं यह शुभ समाचार देने दौड़ा आया हूँ – लीजिए यह मिठाई स्वीकार करें। मुझे बीते कल की पूरी घटना स्मरण आ गई–तत्क्षण ही मैने श्री काले से कहा–बाबा की झाँकी आज भी यथावत है– उन्हें ही नमन करें, उन्हें ही अपना

धन्यवाद दो और मिठाई खिलाओ। श्री काले जी ने प्रियतम को नमन किया एवं प्रसाद चढ़ाया।

जल्दी–जल्दी में जो विवरण उन्होंने बताया कि अभी आधे घंटे पहले भाई घर वापिस पहुँचा है, शरीर पर गरम स्वेटर था, हाथ में घड़ी व सोने की अंगूठी पहने था– दोनों गायब, अर्द्ध मूर्छित सी अवस्था में है, कहता है कि प्रसूतिकागृह से बाहर आने के बाद वह एक पान की दुकान पर पान खाने खड़ा हो गया, उसी समय कोई साधु उसके समीप आया और कहने लगा – ''बंदा बड़ा परेशान सा लगता है – लो यह प्रसाद खाओ। सब ठीक हो जायेगा।'' उसके अनुसार प्रसाद खाने के बाद उसे जरा भी स्मरण नहीं है वह कहाँ रहा है हाँ यह अवश्य बता रहा है कि अभी वह रायसेन से आ रहा है। रायसेन से भोपाल कैसे किसके साथ आया– उसे कुछ भी स्मरण नही।

इतना कहने के बाद श्री काले ने कहा कि सर मैं बाद में आपसे भेंट करूंगा अभी केवल इतनी ही बात हुई है। अभी जाकर सभी जगह रिश्तेदारों को खबर करनह है – चारों ओर से पूछताछ हो रही है– और वे यह सब बताकर शीघ्रता से वापिस लौट गए। उस दिन के बाद मैं तीन वर्ष और भी भोपाल में रहा किंतु श्री काले से कभी भेंट नहीं हुई।

मैं नहीं जानता इस घटना को महज संयोग माना जाये या कि उससे हटकर कुछ और, किंतु एक बात तो तय है कि मैंने जो भी श्री काले को करने को कहा– उस पर मेरा कोई वश नहीं था।

मैने पढ़ा है कि अमेरिका में एक वनस्पति शास्त्री था। बड़े अजीब प्रयोग वह पेड़ पौधों पर अपने सारे जीवन भर करता रहा। एक बार उसने एक गमले में केक्टस का एक पौधा लिया। आप जानते है केक्टस का पौधा पैने कांटों से भरपूर रहता है। उसने उस केक्टस के पौधे को अपने सामने रखा और बड़ी ही आत्मीयता से प्यार भरी दृष्टि उस पर डाली और उस पौधे से कहा – ''मित्र तुम मेरी भाषा नहीं समझते, मैं तुम्हारी भाषा नही समझता, किंतु प्रेम परमात्मा की वह असीम अनुकंपा है जिसे किसी भाषा की आवश्यकता नहीं पड़ती। मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ, सचमुच ही। यदि मित्र मेरे–तुम मेरे प्रेम को स्वीकार कर रहे हो तो उसका मुझे कोई

प्रमाण दो, और प्रमाण तुम यह दो कि तुम अपने शरीर में एक ऐसी शाखा उत्पन्न करो जिसमें एक भी कांटा न हो। प्रतिदिन वह वनस्पति प्रेमी उस केक्टस के पौधे को अपने समक्ष रख यही बात कहता। जरा धैर्य की कल्पना तो कीजिए उस व्यक्ति की पूरे सात वर्षो तक वह ऐसी प्रार्थना उस पौधे से कहता रहा। सात वर्ष बाद वह वनस्पति शास्त्री एक दिन हर्ष विभोर हो नाचने लगा। उसने देखा कि केक्टस के शरीर से एक ऐसी शाखा उत्पन्न हुई है जिसमें एक भी काँटा नहीं है– वह भाग मानों मखमल का बना हुआ है– कितने गहन प्रेम का प्रतिपादन किया होगा उस व्यक्ति ने।

मुझे लगता है आवेश के उन क्षणों में श्री काले ने अपनी समस्त चेतना को सहेज कर प्रियतम बाबा के चरणों में समर्पित किया होगा कातर हो प्रेम के इतने गहरे आवेश में अपना दुःख प्रियतम से कहा होगा कि प्रियतम को उनकी प्रार्थना सुननी ही पड़ी। अरे जब प्रेम का प्रतिदान एक पौधा भी करता है तो प्रियतम बाबा तो प्रेम के साक्षात सागर हैं–प्रार्थना तो श्री काले की ही सुनी प्रियतम ने, मुझे तो मात्र यों ही बैठे ठाले मध्यस्थ की भूमिका निर्वाह करने का साधन बनाया गया, आखिर उसके सिवा जहाँ में कौन किसका है ?

''उनसे जब दिल की बात होती है,
बज़्म में कायनात होती है।
लब को महसूस तक नहीं होता
आँखों आँखों में बात होती है।''

करूणा के सागर

उन दिनों मैं भोपाल (म.प्र.) स्थित मोतीलाल विज्ञान महाविद्यालय में वरस्पति शास्त्र का प्राध्यापक था। वर्ष उन्नीस सौ नब्बे के अक्टूबर माह में एम.एस.सी. के छात्रों को अध्ययन हेतु देहरादून व मसूरी ले गया। छात्रों के उस दल में उन्तीस छात्रायें व चार छात्र थे। देहरादून में प्रवास के दौरान मेहेर धाम व मेहेर माफी के दर्शन किए व प्रियतम बाबा के चहेते डॉ.जी.एस.एन.मूर्ति का सान्निध्य सुख भी पाया।

अगले दिन हम लोग मसूरी रवाना हुए। मसूरी में हमारे कार्यक्रमानुसार हमें तीन दिन रूकना था। दूसरे दिन हमारा दल सरकारी बस से मसूरी का बड़ा ही प्रसिद्ध एवं प्राकृतिक छटा से भरपूर अद्भूत ''काम्पटी फाल'' गया। उद्देश्य यही था कि वहाँ की वनस्पति का हम अध्ययन करें व आवश्यक पेड़ पौधों के नमूने एकत्रित करें। हम लोग काम्पटी फाल में बिल्कुल नीचे उतर गए। आवश्यक अध्ययन के साथ–साथ सभी ने प्राकृतिक दृश्य का भरपूर आनन्द लिया, जी भर कर स्नान भी किया, ठंड कुछ ज्यादा ही थी किन्तु उत्साह व जोश हम लोगों का ऐसा था कि शायद ठंडक को भी थोड़ी देर के लिए सहम जाना पड़ा हो।

नियत समय पर ''फाल'' से ऊपर आये व उसी बस से वापिस चल पड़े। मसूरी बस स्टैण्ड पहुँचने के पूर्व लगभग तीन किलोमीटर इसी तरफ एक तिराहा है जहाँ से एक मार्ग ''कम्पनी गार्डन'' को जाता है। उस दिन के हमारे कार्यक्रम में ''कम्पनी गार्डन'' के आसपास के क्षेत्र में पाई जाने वाली वनस्पति का अध्ययन भी शामिल था अतः हम लोग इसी तिराहा पर उतर पड़े। बस अपने गन्तव्य को बढ़ गई और हम लोग अपनी मंजिल की ओर बढ़ चले।

अभी मुश्किल से आधा फर्लांग ही चल पाए थे कि एक छात्रा मेरे पास दौड़ी–दौड़ी आई और बोली 'सर', उस लड़की को देखिए जाने क्या हो गया है? चूँकि मैं आगे था कुछ छात्र–छात्राऐं मेरे साथ चल रहे थे, और मैं किसी वनस्पति को हाथ में लिए उसके विषय में बता रहा था अतः मैंने किसी दूसरी छात्रा को भेजा कि जाकर देखो उसे क्या कष्ट है। थोड़ी देर में वह छात्रा दौड़ी–दौड़ी मेरे पास आकर कहने लगी ''सर, उसकी हालत बहुत गम्भीर है आप चलकर देखिए''। मैं पीछे कुछ कदम चला, देखा हमारे दल की उस छात्रा की हालत अत्यंत चिन्ताजनक है, उसके

मुँह पर झाग आ रहा है पेट जोर–जोर से उछाल मार रहा है, हाथ पाँव झटके से बार बार छिटक कर रह जाते हैं, नेत्र बंद हैं, साँस लेने में उसे तकलीफ हो रही है, वास्तव में वह छात्रा ''दमे'' की मरीज थी। भोपाल से रवाना होने के पूर्व मुझे यह बात ज्ञात नहीं थी, काम्पटी फाल की ठंडक से उसका पुराना मर्ज उभर पड़ा था।

मैने तत्क्षण उस छात्रा को छात्राओं की मदद से उसी तिराहे तक ले चलने को कहा, कुछ ही देर में हम वहाँ पहुँच गए। अब हमारी परीक्षा की घड़ी थी। मसूरी शहर की ओर जाने वाले हर वाहन को मैने रोकने की कोशिश की, कुछ तो रूके ही नहीं, कुछ रूके, मैंने अपने स्थिति से उन्हें अवगत कराया, किन्तु उन्होनें मुझे सहायता देने में असमर्थता जाहिर की। सारी वस्तुस्थिति सुन, उस छात्रा की हालत देख सभी कोई न कोई बहाना बनाकर आगे बढ़ जाते, और यहाँ उस छात्रा की हालत और भी खराब होती जा रही थी, और मैं किंकर्तव्यविमूढ़ सा ठगा सा सड़क पर निसहाय खड़ा रह जाता।

बड़ी ईमानदारी से कहूँ अभी तक मुझे अपने पर भरोसा था कि किसी वाहन में छात्रा को शहर तक ले जाकर किसी चिकित्सक से उसे आवश्यक दवा दिला दूंगा। इस समय तक केवल मैं ही मैं था, परमात्मा का स्मरण भी नहीं आया किन्तु जब सभी लोग मेरे सारे अनुनय विनय को नज़रअन्दाज कर आगे बढ़ रहे थे, तब उस असहाय स्थिति में मुझे परमात्मा की याद आई। सहसा प्रियतम बाबा का मन ही मन स्मरण किया। कातर भाव से हृदय की गहराई से प्रार्थना की ''प्रभु आज तक ऐसी विषम स्थिति कभी नहीं आई, यदि इस लड़की को कुछ हो जाता है, तो मैं क्या करूंगा, क्या जवाब दूँगा इसके परिवार वालों को आदि आदि ?''

प्रियतम की कृपा बड़ी निराली है, वह तो करूणा का सागर है, हाँ केवल हम ही मांगने में कंजूसी कर देते हैं वह तो इतना देता है कि हमारी झोली ही छोटी पड़ जाये। मैं प्रियतम की प्रार्थना में खोया हुआ ही था कि सहसा एक सज्जन जो मोटर सायकल पर थे और उनके पीछे एक अन्य व्यक्ति भी बैठा हुआ था वे मेरे सामने स्वयं ही रूक गए। वैसे मोटर सायकिल सवार व्यक्तियों को मैं रोकता भी न था क्योंकि मेरा आशय उससे पूरा न हो सकता था किन्तु जब वे स्वयं ही रूके व मुझसे पूछा ''क्या आपको किसी सहायता की आवश्यकता है'' तो मैने उन्हें अपनी सारी

वस्तुस्थिति से अवगत कराया व उस छात्रा की ओर उन्हें इशारा भी किया। उन्होंने उस छात्रा को देखा और तत्क्षण ही अपने पीछे बैठे हुए साथी से कहा कि तुम पैदल आओ और मुझसे कहा कि आप या आपका कोई छात्र उस छात्रा को लेकर मेरे पीछे बैठो और शीघ्रता करो।

मेरे पास उनकी सलाह मानने के अलावा और कोई चारा न था। मैने अपने एक शोध छात्र को कहा कि वह उस बेहोश छात्रा को सहारा देकर मोटर सायकिल से चले। डाक्टर से सम्पर्क करे, हम सब पैदल वापिस आ रहे हैं, वह छात्र उसे लेकर आगे बढ़ गया, हम सभी पैदल वापिस शहर की ओर चल पड़े। लगभग एक घंटे के अन्दर हम जब शहर पहुँये तो पता चला कि वह छात्रा वहाँ के सिविल सर्जन के बंगले पर गई है, जब वहाँ पहुँये तो देखा कि वह उनके ड्राइंग रूम में बैठी गर्म–गर्म काफी पी रही है।

इस अन्तराल में जो हुआ वह स्पष्ट करना भी यहाँ आवश्यक है। जब वे सज्जन उस छात्रा को अपनी मोटर सायकिल से लेकर शहर पहुँचे तो पता चला कि शहर के सभी सरकारी एवं गैर सरकारी अस्पताल किसी खास घटना के कारण बंद हैं, यहाँ तक कि दवा की दुकाने भी बंद है। समय की आवश्यकता को देख वे सज्जन उस छात्रा को लेकर मुख्य चिकित्सक के यहाँ जो उनके अच्छे मित्र थे। वास्तव में वे सज्जन एक्जीक्यूटिव इंजीनियर थे जो कहीं से वापिस आ रहे थे और वहाँ के प्रधान चिकित्सक उनके मित्र थे। प्रधान चिकित्सक ने अपने मित्र के निवेदन पर स्वयं हास्पिटल के पिछले दरवाजे से जाकर स्टोर रूम से आवश्यक औषधियाँ निकाली व उस छात्रा का उपचार किया। कुछ ही समय पूर्व वह छात्रा अपनी सामान्य अवस्था में आई थी–कि इसी समय हम लोग पहुँच गए।

इस घटना का महत्वपूर्ण पहलू यह है कि यदि हम संयोग मान लें कि आज भी दुनिया में कुछ तो ऐसे व्यक्ति हैं जो दूसरों की सहायता स्वयमेव करने को तत्पर रहते हैं इसे संयोग कहा जा सकता है– फिर उसी दिन समस्त अस्पताल एवं दवा की दुकाने बंद और फिर सिविल सर्जन उन सज्जन के व्यक्तिगत परिचितों में से, ये सब सारे के सारे संयोग नहीं कहे जा सकते। यहाँ सोचने की बात यह भी है कि यदि मेरी अनुनय विनय से अन्य वाहन मालिक रूक भी जाते – मेरे कहने से छात्रा

को शहर तक भी ले आते तो शहर में आकर पुनः मेरे समक्ष वही समस्या खड़ी हो जाती कि उसे ले कहाँ जायें। किसी खास ''वजह'' को लेकर उस दिन सभी प्राइवेट एवं सरकारी चिकित्सकों में भारी रोष छाया था। अतः अब बाबा की व्यवस्था देखिए–मेरे लाख प्रयत्न करने पर भी कोई नहीं रूका–रूका अपने आप वही व्यक्ति जिसकी वास्तव में मुझे आवश्यकता थी। अन्य लोग तो सिविल सर्जन के मित्र नहीं थे, वही व्यक्ति रूका जो मुख्य चिकित्सक का मित्र था और जो अपने पद की गरिमा से आवश्यक दवा का प्रबंध करा सकता था, तो ऐसी व्यवस्था है उस दयामय की।

असल में हम समझ नहीं पाते प्रभु कृपा की संरचना को। हम कभी–कभी गहन निराशा में डूब जाते है कि हमारी इतनी प्रार्थना के बाद भी ईश्वर सहायक नहीं हुआ–ये कैसा ईश्वर है? किन्तु बात ऐसी नहीं है। आप जमीन से अपनी आँखों से एक किलोमीटर की दूरी तक देख सकते है, अगर ऊँचाई पर खड़े हो जायें तो तीन किलोमीटर तक का भी दिखाई पड़ सकता है किंतु ईश्वर इतनी ऊँचाई पर खड़ा है जहाँ से उसे आपके जीवन की सारी दूरी दिखाई पड़ रही है। वह देख रहा है आपके मार्ग में कहाँ समतल है और कहाँ गढ्ढे। उसे आपकी सहायता कहाँ करनी है–प्रभू की व्यवस्था बड़ी निराली है।

प्रसंगवश मुझे रामायण का एक प्रसंग स्मरण हो रहा है, लक्ष्मण को शक्ति लग गई है– हनुमान संजीवनी बूटी लेने गए हैं, लक्ष्मण भगवान राम की गोद में लेटे है। कुछ ही देर में हनुमान संजीवनी बूटी ले आते हैं, वैद्य सुषेन दवा देते है, लक्ष्मण नेत्र खोल देते है। अब भी लक्ष्मण राम की गोद में लेटे हैं तभी जामवन्त लक्ष्मण से पूछते हैं – ''लक्ष्मण अभी जब तुम बेहोश थे तब–और अब जबकि तुम होश में आ गए हो इन दोनों स्थितियों में क्या फर्क है?

लक्ष्मण कहते हैं – एक केवल एक ही फर्क है जामवन्त, अभी जब मैं बेहोश था तब भी प्रभु राम की गोद में था किन्तु बेहोशी की वजह से मैं नही जानता था कि मैं राम की गोद में हूँ – अब जबकि होश में आ गया हूँ तब भी भगवान राम की गोद में हूँ–किन्तु इस समय मैं जानता हूँ कि मैं राम की गोद में हूँ–प्रभु की गोद में हूँ तो फर्क यदि जानना चाहते हो तो केवल यही फर्क है कि गोद में तब

भी था बेहोशी की हालत में और गोद में अब भी हूँ किन्तु पहले भान नहीं था अब ज्ञान है।

हम भी उस प्रियतम की गोद में तब भी थे जब कोई वाहन रूक नहीं रहा था–मात्र छात्रा मौत से संघर्ष कर रही थी और उस समय भी थे जब वह ठीक हो गई, किन्तु उसकी कृपा को पहचानने में देर तो कर ही दी .....है न?

तू अनन्त.....
स्वर तुझको बांध नहीं पाता है
थोड़ी सी भूमि गुनगुनाता हूँ
ज्यादा आकाश छूट जाता है.....।

जब आशिक मस्त फक़ीर हुए

चार अगस्त उन्नीस सौ चौरानबे को मैने शासकीय महाविद्यालय उमरिया (शहडोल) में प्राचार्य का कार्यभार सँभाला, अभी परिवार जन छिन्दवाड़ा में ही थे, जहाँ मैं पूर्व में प्राचार्य था। मैंने अपने रहने की व्यवस्था की और दो दिन की छुट्टी लेकर छिन्दवाड़ा वापिस आया आवश्यक समान आदि लेने। इस समय महाविद्यालय में छात्रों के प्रवेश का क्रम जारी था। लौटकर जब मैं वापिस उमरिया पहुँचा तो अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा से एक आवश्यक पत्र प्राप्त हुआ कि म.प्र.शासन की इच्छानुसार इस वर्ष महाविद्यालयों में छात्र संघ के चुनाव कराये जाना हैं और शासन ने इस कार्य हेतु तिथियाँ भी निर्धारित कर रखी हैं फलतः सोलह अगस्त से उन्नीस अगस्त के मध्य चुनाव में भाग लेने वाले छात्र अपना प्रचार करें व बीस अगस्त को चुनाव सम्पन्न हों। पत्र के साथ प्राचार्य को चुनाव सम्बन्धी आवश्यक निर्देश भी संलग्न थे। उमरिया महाविद्यालय चूँकि अ.प्र.सिं.वि.वि. रीवा के क्षेत्रान्तर्गत आता है अतः आदेशानुसार तत्संबंधी सूचना छात्रों को दे दी गई।

चूँकि पिछले कई वर्षो से महाविद्यालयों में छात्र संघ चुनाव, मारपीट एवं अनावश्यक हिंसक जैसी घटनाएँ होने के फलस्वरूप शासन ने बंद कर दिए थे, किन्तु इन्हें पुनः पिछले वर्ष से आरंभ करने का शासन ने निर्णय लिया था। उस महाविद्यालय में कुल दस सहायक प्राध्यापक थे, उनमें सबसे वरिष्ठ प्राध्यापक को मैंने छात्र संघ का प्रभारी बनाया और चुनाव प्रक्रिया की आवश्यक जानकारी देते हुए–कार्य आरंभ करने के निर्देश दिये।

छात्रों में इस चुनाव को लेकर बड़ी गहमागहमी थी – बीस अगस्त आते आते मैने महसूस किया कि उस छोटे से नगर का सारा वातावरण चुनावमय हो गया है– हर गली गली में चुनावी पोस्टर, जीपों कारों, मोटरसाईकिलों पर चुनावी प्रचार..... मानों छात्र संघ के चुनाव न होकर विधान सभा या लोक सभा के चुनाव हो रहे हों। ऐसे अवसरों पर अवांछित तत्वों का साथ प्रचार कार्य हेतु लिया ही जाता है सा इन छात्रों ने भी अपने अपने समर्थक आस–पास के नगरों से बुला लिए। नियत तिथि को चुनाव कार्य शाम तीन बजे तक निर्विघ्न सम्पन्न हो गया। छात्रों ने जिन पदों पर

अपने प्रत्याशी खड़े किए थे, वे थे, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सचिव और सह सचिव। इनमें सर्वाधिक जोर था अध्यक्ष पद पर।

तीन बजे के बाद उसी दिन मतों की गिनती प्रारंभ करनी थी। मैंने गिनती प्रारंभ करने के पूर्व प्रत्याशियों को बुलाया और उनको स्पष्ट किया कि किस दशा में उनके मत को उचित माना जायेगा एवं किस आधार पर मत को निरस्त किया जा सकेगा। सभी ने अपनी सहमति व्यक्त की।

अब मतों की गिनती का कार्य प्रारंभ हुआ। गिनती के दौरान अध्यक्ष पद के एक प्रत्याशी को पड़ा एक मत नियमों के विपरीत जाने पर निरस्त घोषित किया गया जिसे उसने भी स्वीकार किया। जब गिनती समाप्त हुई तो परिणाम यह हुआ कि अध्यक्ष पद पर चुनाव लड़ रहे दोनों प्रत्याशियों के बराबर बराबर मत निकले। ऐसी दशा में नियमानुसार लाटरी डालकर परिणाम जिसके पक्ष में निकले–वह उसे स्वीकार करेगा–यही प्रावधान था मैंने वस्तुस्थिति को स्पष्ट करते हुए लाटरी पद्धति से परिणाम निकालने हेतु प्रत्याशियों को अवगत कराया तो वह प्रत्याशी जिसके पक्ष का एक मत निरस्त हुआ था– एकदम से बदल गया एवं आरोप लगाना प्रारंभ कर दिया कि मेरा मत वैध है – उसे आप वैध घोषित करें, मेरे लिए यह सम्भव नहीं था।

समझाने की सारी स्थिति जब समाप्त हो गई तो मैने स्पष्ट शब्दों में कहा कि जो मत अवैध घोषित किया गया है वह अवैध ही है–उसे वैध घोषित कदापि नहीं किया जा सकता। इस समय तक छात्रों में काफी गहमा–गहमी बढ़ गई थी। महाविद्यालय के बाहर परिसर में दोनों प्रत्याशियों के समर्थकों की भीड़ बढ़ती जा रही थी, तलवार, तमन्चे, बर्छी, भाला इकट्ठे किए जाने लगे। पुलिस के मात्र सात सिपाही एवं एक असिस्टेन्ट सब इन्सपेक्टर मेरे साथ थे। स्थिति की गम्भीरता को देखते हुए वह सब इन्सपेक्टर भी घबरा रहा था। रात्रि के अब तक दस बज चुके थे।

मैने भी जब यह गम्भीर स्थिति देखी तो उचित यही समझा कि किसी भाँति स्थिति को अभी टाला जाय और लाटरी न डाली जाय। अतः दोनों प्रत्याशियों को मैने यही कहा कि आप लोग मेरा निर्णय तो मान नहीं रहे, क्या विश्वविद्यालय के कुलपति का निर्णय मानेंगे? दोनों पक्षों ने अपनी स्वीकृति दे दी। मै यह अच्छी तरह जानता था कि आर्डिनेन्स की व्यवस्था के अनुसार अंतिम निर्णय प्राचार्य को ही लेना

है। कुलपति का इससे सम्बन्ध नहीं है, किन्तु स्थिति की भयावहता को टालने के लिए इस तर्क का सहारा लिया जो कारगर सिद्ध हुआ। उसी समय सभी मत पत्रों को सील कराया गया और अगले दिन उन्हें रीवा भेजने की व्यवस्था का आदेश दे रात्रि के ग्यारह बजे सभी को विदा किया।

अगले दिन मतपत्रों को रीवा भेजा गया–किन्तु जैसा कि अपेक्षित था कुल सचिव ने यह कहकर सभी मतपत्रों को वापिस लौटा दिया कि यह प्राचार्य का अधिकार क्षेत्र है–प्राचार्य का निर्णय ही अंतिम निर्णय होगा।

सम्बंधित छात्र पुनः मेरे पास आये, मैने फिर से उनसे लाटरी डालकर निकलने वाले परिणाम को स्वीकार करने पर जोर दिया किन्तु वे अपनी बात पर अड़े रहे। मैने उन्हें स्पष्ट कहा कि एक सप्ताह के अंदर यदि आप प्रावधान के अनुसार निर्णय स्वीकार करने को राजी नहीं हुए तो मुझे अपने विशेषाधिकार का उपयोग करते हुए चुनाव निरस्त करने के निर्णय लेने हेतु बाध्य होना पड़ेगा।

इस समय तक दोनों पक्षों के साथ नगर की राजनैतिक पार्टियों के नेता भी जुड़ गए थे, एक पक्ष चाह रहा था कि उस अवैध मत को वैध घोषित मानकर उसे निर्वाचित हुआ घोषित किया जाय। दूसरे पक्ष की दलील थी कि चुनाव निरस्त कर पुनः चुनाव कराये जायें। प्रावधान में पुनः चुनाव कराने का कोई बिन्दु नहीं था – अतः पुनः चुनाव कराने का प्रश्न ही नहीं उठता था। इसी बीच दोनों पक्षों ने अपने अपने हित के तर्क देते हुए मेरे विरूद्ध एक केन्द्रीय मंत्री, राज्यपाल, शिक्षा मंत्री, मुख्य सचिव, शिक्षा सचिव, आयुक्त उच्च शिक्षा, उपकुलपति, जिलाध्यक्ष आदि को अपने अपने ज्ञापन भेजे, मुझे भी एक–एक प्रति जानकारी हेतु रजिस्टर्ड डाक से प्राप्त हुई।

प्रायः प्रतिदिन सम्बन्धित प्रत्याशी किसी न किसी भाँति मेरे निर्णय बदले जाने की खोज खबर लेते–किन्तु मैं अपने निर्णय पर अडिग रहा। मेरे साथ अपनी एक विवशता यह भी थी कि उमरिया मैं नया नया पहुँचा था, गाँव की गलियाँ नई, छात्र नए, स्टाफ के सदस्यों के स्वभाव से भी पूर्ण परिचित नहीं, अधिकारी वर्ग से भी सम्पर्क–संबंध नहीं सभी तो नया नया था, इसलिए भी अहसास यह होने लगा कि मुझे वांछित सहयोग भी प्राप्त नहीं हो रहा है। अपने महाविद्यालय के स्टाफ के

सदस्यों का यह हाल था कि जो प्रत्याशी उनसे अपनी बात कहता वे मारे डर या धमकियों में उनके ही पक्ष की बात करने लगते–यानि कि हर स्थिति में सारा दोषारोपण प्राचार्य पर ही ला देते। मुझे भी धीरे–धीरे ये खबरें छात्रों द्वारा ही प्राप्त होने लगी।

मेरी दी हुई समय सीमा के एक दिन पूर्व मैने जिलाध्यक्ष से सम्पर्क साधा और उनसे निवेदन किया कि आवश्यक सुरक्षा व्यवस्था प्रदान की जाये ताकि मैं अगले दिन परिणाम घोषित कर सकूं।

उनका स्पष्ट जवाब था कि आप स्थानीय एस.डी.एम. को कहें। तत्कालीन स्थानीय एस.डी.एम. सम्भवतः छात्रों की इस समस्या से उलझना नहीं चाहते थे– अतः उन्होंने इस पर अपनी अनिच्छा ही जाहिर की। एस.पी. से सम्पर्क साधने पर भी निराशा ही हाथ लगी। स्थानीय पुलिस उव अधीक्षक से जब सम्पर्क साधा तो पता चला कि उनकी पत्नि का स्वर्गवास एक दिन पूर्व हो गया है अतः वे अवकाश पर है। रात्रि को मैने चाहा कि कुलपति जी से सम्पर्क साधकर उनसे यह निवेदन करूँ कि वे अपने स्तर पर आयुक्त को स्थिति से अवगत करा दें ताकि कुछ प्रशासनिक व्यवस्था का सहयोग प्राप्त हो जाये किन्तु उनसे भी बात न हो सकी, घोर निराशा ही हाथ लगी।

अगले दिन प्रातः ग्याहर बजे मुझे जिलाध्यक्ष शहडोल से फोन पर यह ज्ञात हुआ कि कुछ लड़के उनके समक्ष है और चुनाव परिणाम घोषित कराने की मांग कर रहे हैं। उन्होंने मुझसे पूछा भी कि आप चुनाव परिणाम कब घोषित कर रहे हैं– मैं परिणाम उसी दिन तीन बजे घोषित करने की सूचना फोन आने के पूर्व ही नोटिस बोर्ड पर लगवा चुका था–मैने उन्हें बताया कि परिणाम आज ही तीन बजे घोषित किए जा रहें है।

देखते ही देखते उस दिन पुनः छात्रों के साथ स्थानीय लोगों की भीड़ अनेको अवांछित तत्वों के साथ महाविद्यालय परिसर के समीप एकत्रित होने लगी। इंटेलीजेन्स इन्सपेक्टर ने आकर बताया – ‘‘सर, छात्रों में भारी रोष है आज कुछ भी हो सकता है, तभी पुलिस असि. सब इंसपेक्टर ने कहा कि निकटवर्ती चँदिया के समीप एक एक्सीडेन्ट हो गया है– मेरे छह सिपाही वहाँ गये है – मेरे पास मात्र चार सिपाही हैं

और मैं हूँ, उन चार सिपाहियों में मात्र एक के पास ही रायफल है – मेरे पास पिस्तौल है, मैं ज्यादा से ज्यादा आपकी जान बचा सकता हूँ। मैने पाया बेचारा निरीह पुलिस अधिकारी घबराया हुआ था–चिन्तित तो मैं भी था, और दुःख केवल इस बात का था कि कहीं से कोई सहयोग प्राप्त नहीं हो पा रहा था।

उस समय दिन के दो बज रहे थे, महाविद्यालय के बाहर लगभग तीन हजार छात्रों और अन्य लोगों की भीड़–सभी प्रकार की हिंसक तैयारियों के साथ। मैं अपने कक्ष में अकेला बैठा था–स्टाफ के सदस्यों को मैने उनके नियत स्थान पर ही बैठने को कहा। महाविद्यालय का मुख्य द्वार बंद, स्टाफ के सदस्यों को मैने कह रखा था कि मैने निर्णय ले लिया है कि मुझे क्या करना है–किन्तु क्या निर्णय लिया है यह मैने नहीं बताया था क्योंकि मैं जानता था कि जो कुछ भी मैं कहूँगा वह थोड़ी ही देर में छात्रों को ज्ञात हो जायेगा। छात्र भी असमंजस में थे कि क्या फैसला प्राचार्य ने लिया है।

मै अत्यंत चिंतित था और सोच रहा था– पूरे सेवाकाल में आज का दिन सबसे बड़ी परीक्षा का दिन है–किन्तु जो भी हो मुझे तो नियमानुसार ही निर्णय देना है– अब परिणाम चाहे जो हो–तभी चपरासी डाक लाया। हालाकि प्रतिदिन डाक प्रातः ग्याहर बजे महाविद्यालय आ जाती थी–किन्तु न जाने क्यों उस दिन डाक कुछ लेट हो गयी और मुझे 2:15 दोपहर को प्राप्त हुई।

मैने संवेग की उसी स्थिति में आए हुए पत्रों को देखा–तो उनमें एकपत्र मेरे एक अभिन्न मित्र श्री कृष्णगोपाल श्रीवास्तव का था जो रीवा में असिस्टेंट इंजीनियर के पद पर कार्यरत है। सर्वप्रथम मैने उसी पत्र को खोला और खोलते ही जैसे ही पत्र पर निगाह पड़ी मैं चौंक पड़ा। मैने देखा कि पत्र के शीर्ष पर ही श्री के.जी. श्रीवास्तव ने प्रियतम बाबा का एक बड़ा ही प्यारा, छोटा सा चित्र काटकर चिपकाया हुआ है, प्रियतम पर दृष्टि पड़ते ही सारे शरीर में सनसनी फैल गई। इसके पूर्व श्रीवास्तव जी ने अनेकों पत्र मुझे लिखे थे किन्तु यह पहला ही पत्र था जिसमें उन्होंने प्रियतम बाबा के चित्र को भी साथ भेजा था, – क्या यह पत्र उसी दिन मिलना था? आगे पीछे भी मिल सकता था– और क्या इसीलिए ही उस दिन डाक मेरी टेबिल पर विलम्ब से पहुँची थीं? चित्र की छबि वही थी ''रियल हेपीनेस'' वाली

– एक शरारत भरी मुस्कान युक्त–मैने प्रियतम को प्रणाम किया और पूरे पत्र को पढ़ा – मेरे मुँह से निकला –

ऐसे तो चांद तारे भी न टूटेंगे अपने आप
हर दो कदम पर अपनी भी तदबीर चाहिए
आँखों के सामने तेरी तस्वीर चाहिए।

न जाने कैसे मैं अपने पूरे आत्म विश्वास से भी उठा – चेहरे पर एक चमक उभर पड़ी, पूर्ण शान्त जरा भी उद्विग्नता नहीं, लगा जैसे जो चाहता हूँ–वह जो गया है क्योंकि मन बार–बार यही कह रहा था– ऐसे विशेष समय बाबा की उपस्थिति कुछ मायने रखती है।

अब तक तीन बजने को मात्र पाँच मिनिट शेष रह गए थे। मैने संबंधित प्रत्याशियों को बुलवाया–वे आए–मेरे सभी प्राध्यापकगण भी। सभी विस्मय हो यह भाँपने की कोशिश कर हे थे कि मैने इस समस्या का क्या समाधान निकाला है? छात्र भी दम साधे हुए। श्री के.जी.श्रीवास्तव का पत्र मैने अपनी जेब में ही रख लिया था– अतः मन ही मन बाबा के उसी चित्र को नमन करते हुए मैने दोनों प्रत्याशियों से कहा–

''मेरा निर्णय यथावत है, परिणाम–लाटरी पद्धति से ही निकाला जायेगा और मेरा आदेश है कि आप दोनों इसे स्वीकार करें।'' मैने देखा उन दोनों ही प्रत्याशियों के चेहरे सपाट, निर्विकार– एक क्षण भी खोये बिना–मेरे पुनः पूछने पर दोनों ने अपनी स्वीकृति दे दी कि उन्हें मेरेा निर्णय स्वीकार है। मैने दोनों से लिखित में सहमति मांगी–दोनों ने लिखित सहमति दी। सम्बन्धित प्रभारी प्राध्यापक से मैने लाटरी से परिणाम निकालने कहा–प्रक्रिया पूरी हुई जिसका नाम निकला था–उसे विजयी घोषित किया गया। मैने दोनों छात्रों को जीवन की हार–जीत, ऊँच–नीच, सम–विषम परिस्थितियों में विवेक से कार्य करने और प्राचार्य की हैसियत से उन्हें धन्यवाद देते हुए कहा– ''मुझे तो तब विश्वास हो कि जब हारने वाला छात्र जीतने वाले छात्र से गले मिले उसे बधाई दे। कल तक खूँखार बना हुआ छात्र जैसे, यंत्रवत हो तत्क्षण ही उठा और विजयी छात्र से गले मिला, दोनों छात्रों ने आकर मेरे पैर छुए, पहले से ही लाई गई मिठाई को उन्होंने मुझे खिलाया, गुलाल लगाई और नृत्य

करते हुए बाहर निकले। बाहर प्रतीक्षरत हजारों व्यक्तियों में परिणाम क्षण भर में फैल गया– हारने वाले छात्र के समर्थक उस पर नाराज–अपना रोष व्यक्त कर रहे थे – किन्तु वह अपनी मस्ती के रंग में मस्त–उसके समर्थकों को भी रह जाना पड़ा। बैण्डबाजों के साथ नृत्य करते हुए सभी छात्रों ने पूरे नगर में भ्रमण किया–सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि जो छात्र हारा था वह नृत्य करने वालों में सबसे आगे था। मेरे स्टाफ के सभी सदस्य, पुलिस अधिकारी–अन्य व्यक्ति अहमकों की भाँति मेरी ओर देखते रह गए।

मैने सभी को धन्यवाद देते हुए विदा किया व स्वयं भी प्रियतम को मन ही मन नमन करते हुए, बिल्कुल हल्के मन से अपने घर वापिस आया। अपने कमरे के दरवाजे बंद कर अगरबत्ती जलाकर प्रियतम बाबा की अश्रुभरी आँखों से आरती की व चुपचाप पलंग पर लेट गया। बाहर कहीं से छात्रों के जुलूस की जयजयकार व बैण्डबाजों की आवाज भी सुनाई दे जाती थी। प्रभु की कृपा को स्मरण करते हुए एक हल्की तन्द्रा सी लग गई– मन तनाव से मुक्त हो गया था न। अचानक ही उस तन्द्रामय स्थिति में मैने देखा कि वे सभी अधिकारी एक के बाद एक चित्रित दुए जिनसे मैने सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया था–कि ठीक उसी समय प्रियतम बाबा प्रगट हुए– व आवाज आई ''देख–इन्हें देख। ये सब.....हैं, क्या अब भी तुझे इनसे सहायता मांगनी चाहिए थी? बस मैं इतना ही सुन पाया – कि उसी अवस्था में गला भर आया और रो पड़ा – चिल्लाया – ''बाबा'' कि उस विशेष अवस्था की परते जैसे खुल गई और मैं पसीने से तर बतर हुआ जा रहा था–उठ कर पलंग पर बैठ गया किन्तु शरीर काँप रहा था – मुझे अच्छी तरह स्मरण है, मुझे अपनी सामान्य अवस्था में आने हेतु पूरे सात दिन लगे थे।

आज बाबा के इस पुण्य स्मरण को स्मरण करते हुए एक बड़ी ही आँख खोल देने वाली कथा याद आ रही है– ''मरूस्थल में एक व्यक्ति परमात्मा के गीत गाता हुआ अपनी मस्ती में चला जा रहा था चूँकि मरूभूमि थी अतः उसके पैरों के चिन्ह रेत पर स्पष्ट उभर रहे थे अचानक ही उसकी नजर पड़ी अपने पास ही कि एक जोड़ी पैरां की छाप और भी उसी के साथ–साथ उभरती चली जाती है– उसने चारों ओर दृष्टि डाली किन्तु कोई भी नहीं–निपट अकेला–वह आश्चर्य चकित हुआ कि जब

मैं अकेला हूँ तब ये एक जोड़ी पैर और कसके? फिर मन ही मन सोचा – मैं प्रभु के गीत गा रहा हूँ साथ ही वीणा भी बजा रहा हूँ– हो सकता है वीणा की मधुर तान पर छेड़ा प्रभू का गीत उन्हें भा गया हो– और वे स्वयं चले आए हों सुनने– यह सोच पुनः उसने अपनी वीणा की तान छेड़ी और गीत गाता हुआ आगे बढ़ा–एक जोड़ी पैरों के निशान अलग से अब भी बनते जा रहे थे।

अचानक ही बड़ी तेज आँधी आई। जिनको अनुभव है वे जानते हैं कि मरूस्थल की आँधी बड़ी भयावह होती है– जान लेवा होती है, वह चिल्लाया हे प्रभु मेरी रक्षा करो–किन्तु कोई सहायता देने नहीं पहुँचा। देखते ही देखते उसके बाजू में उभरने वाली पैरों के निशान की जोड़ी भी लुप्त हो गई। आँधी का वेग प्रबल था– उसके पैर रेत में धँसने लगे– उसका आगे बढ़ना दुष्कर हो गया– धीरे–धीरे उसके चारों ओर रेत का ढेर बनने लगा– वह लगभग रेत से ढँकने वाला ही था– पुनः सहायता की पुकार लगाई किन्तु कोई नहीं आया। अब वह विवश हो चुका था रेत से उसका रहा सहा शरीर भी ढँक चुका था।

कुछ देर बाद आँधी शान्त हुई। स्थिर हुई रेत धीरे–धीरे खिसकने लगी, इधर कुछ क्षणों बाद उस व्यक्ति को भी कुछ होश सा आया– उसने अपने शरीर में हरकत की–रेत और सरकी–और किसी प्रकार लगभग घंटे भर की कोशिश के बाद वह उस रेत से बाहर निकल पाया। अपने शरीर से रेत झाड़ी–कुछ देर विश्राम किया, हिम्मत जुटा पुनः अपनी यात्रा शुरू की– अचानक क्या देखता है कि पुनः उसके बाजू में एक जोड़ी पैरों के निशान उभरने लगे हैं। उसने उलाहना दिया–''अब तुम्हारी क्या आवश्यकता? अरे जब जरूरत पड़ी थी, प्राणों पर जब संकट आया था–उस समय तो तुम न जाने कहाँ भाग खड़े हुए अब जब कि संकट टल गया है–किसी भाँति मैने अपने प्राणों की रक्षा की – अब तुम फिर साथ–साथ हो लिए अब क्या आवश्यकता रही तुम्हारी? तभी एक आवाज आती है–कि जब आँधी आई थी तो मैने तुम्हें अपनी गोद में उठा रखा था–तो स्वाभाविक ही एक ही जोड़ी पैरों के निशान तो उभरते – और जब आँधी का वेग समाप्त हो गया, खतरा टल गया तो मेने पुनः तुम्हें जमीन पर उतार दिया और अब साथ–साथ चल रहा हूँ–इसलिए अब पुनः दो जोड़ी पैरों के

निशान तुम्हें दिखाई पड़ रहे हैं – बोलो इसमें भागने जैसी बात कहाँ आई–अरे मैं तो तुम्हारे साथ तब भी था और अब भी हूँ।

तो क्या मैं भी यह मानने की जुर्रत कर लूँ कि जब मैं अत्यधिक मानसिक दबाव में था, जब चारों ओर से निवेदन करने पर भी सहायता प्राप्त नहीं हुई थी अवसाद की गहरी अवस्था में स्वयं को पा रहा था, हजारों उपद्रवियों से चारों ओर से घिरा हुआ उमरिया महाविद्यालय के उस कक्ष में अकेला बैठा था तब भी मैं अकेला नहीं – अपने प्रियतम बाबा की गोद में था.....

हैं आशिक और माशूक जहाँ बां शाह वजीरी है बाबा।
नै रोना न। धोना है नै दर्द असीरी है बाबा।।
दिन रात बहारें चोहलें है, औ ऐसे सफ़ीरी है बाबा।
जो आशिक हुए सो जाने है, यह भेद फकीरी है बाबा।।
हर आन हँसी हर आन खुशी, हर वक्त अमीरी है बाबा।
जब आशिक मस्त फकीर हुए, फिर क्या दिलगीरी है बाबा।।
कुछ जुल्म नहीं, कुछ और नहीं, कुछ दाद नहीं, फरियाद नहीं।
कुछ कैद नहीं, कुछ बन्द नहीं, कुछ जब्र नहीं, आज़ाद नहीं।।
शागिर्द नहीं उस्ताद नहीं, वीरान नहीं आबाद नहीं।
हैं जितनी बातें दुनिया की, सब भूल गए कुछ याद नहीं।।
हर आन हँसी हर आन खुशी, हर वक्त अमीरी है बाबा।
जब आशिक मस्त फकीर हुए, फिर क्या दिलगीरी है बाबा।।
जिस सिम्त नजर कर देखे हैं, उस दिलवर की फुलवारी है।
कहीं सब्जी की हरियाली है, कहीं फूलों की गुल क्यारी है।।
दिन रात मगन खुश बैठे हैं, औ' आश उसी की भारी है।
बस आप ही वो दातारी हैं, औ' आप ही वो भंडारी हैं।।
हर आन हँसी, हर आन खुशी, हर वक्त अमीरी है बाबा।
जब आशिक मस्त फकीर हुए, फिर क्या दिलगीरी है बाबा।।

मेरी खुशी के मालिक

मैं नजर से पी रहा हूँ, ये समां बदल न जाये
न झुकाओ तुम निगाहें, कहीं रात ढल न जाये
मेरे अश्क भी हैं इसमें, ये शराब उबल न जाये
मेरा जाम छूने वाले, तेरा हाथ जल न जाये
मेरी जिन्दगी के मालिक, मेरे दिल पे हाथ रख दे
तेरे आने की खुशी में, मेरा दम निकल न जाये
अभी रात कुछ है बाकी, न उठा नकाब साकी
तेरा रिन्द गिरते गिरते, कहीं फिर सँभल न जाये,
मै नजर से पी रहा हूँ.....

प्रभु ईसा एक बार एक गाँव से गुजर रहे थे अपने शिष्यों के साथ। उनके चारों ओर ग्रामवासी एकत्रित हो गए। तभी भीड़ में से किसी व्यक्ति ने पूछ लिया ''प्रभो स्वर्ग का अधिकारी कौन है?'' यीशु ने एक छोटे से शिशु को अपनी गोद में उठा लिया और कहा ''स्वर्ग में जाने का अधिकारी ये है'' शरद ऋतु की प्रातःकाल में एक अबोध शिशु के चेहरे पर विस्मय की रेखा खिंची या नहीं ये तो नहीं मालूम–किन्तु भीड़ में खड़े लोग इस उत्तर से अवश्य विस्मय की स्थिति में पड़ गए। यीशु का संकेत था कि जो इतना सरल, निश्चल और निर्मल स्वभाव का हो जाता है– जैसा कि यह शिशु है– इसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष, ईर्ष्या, मत्सर आदि किसी भी चीज का अभी बीजारोपण नहीं हुआ है– उतना ही निर्मल है जितना निर्मल परमात्मा ने बनाकर भेजा है वही स्वर्ग का अधिकारी है। असल में हम सारे जीवन स्वयं को भरते रहते है व्यर्थ की सामग्री से। रीते कभी होते ही नहीं तो परमात्मा भी यदि प्रवेश हम में करे तो कैसे? सारा कमरा आलतू–फालतू सामान से भरा पड़ा हो तो बिस्तर कहाँ बिछाया जायेगा–खाली जगह तो चाहिए न पैर पसारने को। तो जीवन में हमारे पास बड़ी ही कृपा कर जब कभी परमात्मा आता है तो हम भरे हुए रहते हैं अपने विचारों से और वह चुपचाप लौट जाता है। अनन्त जन्मों से

सम्भवतः यही हो रहा है और यही कारण है कि जीवन–मृत्यु की यह अनवरत श्रृंखला चल रही है। रामायण में गोस्वामी तुलसीदास भी लिखते हैं–

निर्मल मन जन सो मोहि पावा, मोहि कपट छल छिद्र न भावा।

स्वप्न पर शोध करने वाले कुछ चिन्तकों का मत यह है कि स्वप्न में एक अवस्था ऐसी अवश्य निर्मित होती है जब मन इन थोपी हुई परतों से बहुत गहरे में प्रवेश कर जाता है। रात्रि को जब हम सोते है तो दैनिक जीवन के कार्य, व्यापार, भाग–दौड़, चिन्ता, अवसाद, हँसी, प्रसन्नता आदि की परतें मानस पर छाई रहती हैं, ऐसी स्थितियों के स्वप्न रात्रि के प्रथम प्रहर में आते हैं किन्तु मन इन परतों को काटकर जब गहरे में प्रवेश करता है तो स्वप्नों का क्रम या विषय वस्तु बदल जाती है। रात्रि के दूसरे और तीसरे प्रहर में देखे जाने वाले कुछ ऐसे ही स्पप्न होते हैं, किन्तु मन जब सारी भौतिक परतों को चीरता हुआ गहरे में प्रवेश करता है तो आत्मा उत्पत्ति के उस चिरंतन सत्य का स्पर्श पाती है जिसकी उसे निरंतर तड़प होती है। प्रायः रात्रि के अन्तिम प्रहर में ऐसी निश्चल अवस्था निर्मित होती है। यहाँ यह भी आवश्यक नहीं है कि प्रातः काल प्रभु के दर्शन ही होंगे, यह तो निर्भर करता है कि आपने हृदय की किस गहराई से किस चीज को पाने की कितनी तमन्ना की है। स्वप्न विज्ञानियों के अनुसार इस समय तक शरीर विश्राम की अवस्था में होने के कारण मन अपनी भौतिक सत्ता का सान्निध्य पाने को प्रयत्नशील रहता है। यह वह अवस्था होती है जब आप तो है किन्तु संसार नहीं है, व्यापार नहीं है, भागदौड़, यश, अपयश, प्रशंसा, निन्दा, मान–अपमान, जीवन–मृत्यु कुछ भी नहीं है– आप है प्रभु ईसा के उस निश्छल शिशु जैसी अवस्था में जो स्वर्ग को पाने का अधिकारी है।

यह घटना है तामिया की। जनवरी उन्नीस सौ पंचानवे में मैने शासकीय महाविद्यालय तामिया (छिन्दवाड़ा) में प्राचार्य के पद का कार्यभार ग्रहण किया। तामिया सतपुड़ा की रानी, पचमढ़ी की छोटी बहिन कही जा सकती है अपने प्राकृतिक लावण्य की दृष्टि से। महाविद्यालय भी बस्ती से दक्षिण की ओर लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। तीन ओर ऊँची सी पहाड़ियाँ व महाविद्यालय के पीछे पश्चिम दिशा में दो छोटी–छोटी सी नदियाँ व पूव्र में भी एक छोटी सी नदी जैसी रचना जो महाविद्यालय को चारों ओर से घेरते हुए आपस में गले मिल जाती हैं– यानि की

संगम होता है उनका। इस प्रकार तीनों आपस में मिलकर खिलखिलाती हुई कल कल नाद करती आगे दक्षिण दिशा की ओर जाने किससे मिलने बेतहाशा बढ़ती जाती हैं। वर्षा ऋतु में तो प्रकृति का यह वैभव रोज ही न जाने कैसे कैसे स्वरूप बदलता रहता है। अभी जब मैं ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ – तो मैं अपने प्राचार्य कक्ष में ही बैठा हूँ, शाम के छह बज रहे है, रिमझिम–रिमझिम बूंदा–बांदी हो रही है। पीछे खिड़की खुली है तो एक पहाड़ी अपने वैभव से लदी हुई मुझे चिढ़ा सी रही है मानो कहती हो और बैठो अपने कमरे में और कलम घसीटते रहा– यहाँ देखो–मुक्त जीवन, प्रकृति का सारा वैभव, उल्हास, गलबहियाँ डाले हुए, मेरे इर्द–गिर्द मंडरा रहा है।

पहाड़ी को स्पर्श करते, बनते बिगड़ते कुन्तलों के स्वरूप मुझे न जाने किस कल्पना लोक में बहुत गहरे तक ले जाते है। मैं एक टक देखता हूँ, उन मेघों को तो लगता है मानों साक्षात इन्द्र अपने ऐरावत हाथी पर विराजमान कहीं जाने की चेष्टा कर रहे हैं तो कभी लगता है कालीदास के यक्ष का संदेश भेजने यह अल्कापुरी जा रहा है इसीलिए इसे इतनी जल्दी पड़ी है। कभी तो स्वरूप इतना स्पष्ट हो जाता है मानों मेरे प्रियतम मेहेर बाबा अपने वैभव के साथ इस मेघ के वशीभूत हो उस पर सवार अपनी सृष्टि का अवलोकन करने निकल पड़े हैं– तभी बादलों का एक नन्हा सा शिशु मचलता हुआ खिड़की से मेरे कक्ष में प्रवेश कर मेरे चेहरे, टेबिल पर पड़े हुए कागज आदि को रसमय कर देता है मानों कहता हो–यथाथ्र में जी, वर्तमान में जियो, प्रकृति का, शान्त हो पान करो–तुम इसे समझ न पाओगे। हाँ तो बात का क्रम कुछ और आगे बढ़ाया जाये, मैं उपर्युक्त आवास की व्यवसाि न हो पाने के कारण कुछ समय तक महाविद्यालय में ही रात्रि विश्राम करता रहा। अपने दैनिक जीवन के सभी कार्य नियमानुसार इस निस्तब्ध वातावरण में यथावत सम्पन्न होते रहे। परिवार जन पचमढ़ी में रहे और मै यहाँ अकेला प्रकृति की गोद में प्रियतम बाबा के साथ।

इस जीवन में मेरी एक अतृप्त इच्छा रही है और वह यह कि मुझे मधुर कंठ नहीं मिला–जब किसी को गाते हुए सुनता हूँ तो दिल में एक हूक सी उठती है कि काश मैं भी गा पाता–तो प्रियतम के गीत गाता उन्हें अपने मधुर गीतों–गजलों से रिझाता। भोपाल में जब था तो श्री मुकेश कश्यप, श्री धर्मेश, श्री शंभू लिंगम जी से

बाबा के गीत, भजन, ग़ज़ल सुना करता था। अकेले में उनके द्वारा गाई गई पंक्तियों को दोहराने की आज भी आदत है। मेरी भी इच्छा होती कि प्रियतम बाबा के आयोजनों में मैं भी गाता, कभी ये भी कल्पना करता–काश ऐसा सौभाग्य मिला होता कि–प्रियतम मेहेर बाबा जब मानव शरीर धारण किए थे तब मैं भी उन्हें गाकर कोई गजल या गीत सुनाता किन्तु इस धराधाम पर कब किसी की सभी इच्छाऐं पूरी हुई हैं ?

यहाँ पर बरबस ही एक कथा स्मरण हो रही है–लैला और मजनू की। कहते है उस जमाने में एक बार अकाल पड़ा–लैला धनाढ्य परिवार की लड़की थी मजनू तो खो ही चुका था अपनी दीन दुनिया। अकाल की उस काली छाया में लैला के पिता ने भूखों को दिन में एक बार भिक्षान्न बँटवाने का प्रबंध किया, जिसे लैला स्वयं अपने हाथों से बाँटती थी। एक दिन भूख से व्याकुल, अर्द्ध विक्षिप्त अवस्था में पहुँचा मजनू भी, भिक्षान्न पाने वाली उस भीड़ की पंक्ति में खड़ा हो गया–एक लम्बी प्रतीक्षा के बाद जब मजनू का नम्बर आया और उसने भिक्षान्न पाने अपना पात्र आगे बढ़ाया तो कथा कहती है कि लैला ने उसका हाथ झटक दिया, उसे पंक्ति से अलग कर दिया और अन्य को भिक्षान्न देना जारी रखा।

किसी ने कहा भीड़ में से, ''पागल, क्यों अपना सब कुछ बर्बाद कर लिया तूने इस लड़की पर ? अरे इसका तिरस्कार तो देखो–अकाल की इस भीषण बेला में भी उसने तुझे भिक्षा देना भी उचित न समझा–इससे ज्यादा और क्या अपमान हो सकता है तेरा ?

मजनू ने जो जवाब दिया–वह उस जैसी लगन वाला व्यक्ति ही दे सकता है। मजनू ने कहा– ''देखा यही तो बात है–अरे यही तो विशेष बात है लैला की'', इस भीड़ भरी गहमा गहमी में भी उसे अच्छी तरह स्मरण है कि मैं कौन हूँ–और उसे मुझे क्या देना है ? उसे कितनी अच्छी तरह से स्मरण है मेरा''। हम अगर सृष्टि नहीं बदल सकते तो दृष्टि बदल लें। आनंद की धारा बह उठती है– मजनू ने अपनी दृष्टि बदल रखी थी।

हाँ तो अरमान तो मेरा अवश्य ये रहा कि यदि मधुर कंठ होता तो कुछ गाता–प्रियतम बाबा के चित्र को ही अपने समक्ष रख जब मन होता–उन्हें सुनाता।

एक दिन सम्भवतः वह मई पंचानबे का माह था मैं तामिया में प्राचार्य कक्ष में ही उस रात सोते समय अपने प्रियतम बाबा का स्मरण कर, उन्हें सदा की भाँति प्रणाम कर सोया था। सारी रात्रि यह चेतन कहाँ–कहाँ भटका, कुछ ज्ञात नहीं, किन्तु उस विशेष रात्रि के अन्तिम प्रहर में एक स्वप्न देखा कि मैं पूना स्थित ''गुरू प्रसाद'' (जिसमें प्रियतम मेहेर बाबा अपने भक्तों को किसी समय दर्शन लाभ दिया करते थे) में हूँ–सारा हाल खचाखच भरा है। विश्व नियंता, परात्पर सत्ता के शीर्ष प्रियतम मेहेर बाबा सामने एक मंच पर विराजमान हैं– कुछ लोग उन्हें कोई गीत सुना रहे हैं। अचानक बाबा ने मेरी ओर इशारा किया और मैने बड़े ही मधुर कंठ से गाकर उन्हें एक गजल सुनानी प्रारंभ की जिसकी प्रथम पंक्ति मैने सुनाई ही थी– ''मेरी खुशी के मालिक, तुम भर जुदा न होना'' – कि अचानक नींद खुल गई। मैं वही पंक्ति दोहराता हुआ उठा– समय देखा प्रातः के साढ़े पाँच बज रहे थे। शरीर रोमांच से भ उठा। प्रियतम ने मेरी अतृप्त इच्छा स्वप्न में पूरी की थी। क्या आप सोचते हैं इसे शब्दों में व्यक्त करना सम्भव है? इस भीड़ भरे जगत में भी उसे कैसा स्मरण रहा कि मुझे क्या देना है?

यहाँ मैं यह भी स्पष्ट कर दूँ– हालांकि पूना मुझे तीन चार बार जाने का अवसर प्राप्त हुआ किन्तु मैं आज तक गुरू प्रसाद कहाँ स्थित था, वह भी नहीं जानता।

मैं नहीं जानता कि गजल की यह पंक्ति ''मेरी जिंदगी के मालिक–तुम भर जुदा न होना'' किस शायर की है–है भी या नहीं। काफी दिन सोचता रहा अचानक मुझे स्मरण हुआ कि भोपाल केन्द्र के बाबा प्रेमीजन अक्सर बाबा कार्यक्रमों में गजल सुनाया करते हैं–अतः वहीं से क्यों न पूछा जाये, और मैने अपने अभिन्न बंधु श्री टी. आर.शंभूलिंगम जी जो भोपाल केन्द्र के सेक्रेटरी हैं उन्हें पत्र लिखा कि इस आशय की जो भी गजल आप जानते है लिख भेजें। जो गजल उन्होंने भेजी वह इस प्रकार है।

''मुझे कोई गम नहीं है, कि बदल गया जमाना
मेरी जिन्दगी के मालिक, कहीं तुम बदल न जाना,
मुझे छोड़ने से पहले, जरा ये तो सोच लेते

के तेरे सिवा जहाँ में, है कहाँ मेरा ठिकाना
ये घटायें काली–काली, जरा इनका ख्याल रखना
गुमराह कहीं न कर दें, तेरा झूम कर ये आना,
मेरी जिंदगी पे यारब, जोरों सितम जफ़ा क्यों
गिरे गुलिस्ताँ पे बिजली, जले मेरा आशियाना
ये है आरजू कि निकले, मेरा दम तुम्हारे आगे
अभी साँस चल रही है, कहीं तुम चले न जाना
मुझे कोई गम नहीं.....

पुनः कुछ दिनों बाद मुझे एक अन्य गजल पढ़ने को मिली–जिसमें भी ''मेरी जिन्दगी के मालिक'' पंक्ति का प्रयोग हुआ है–जिससे मैने इस अध्याय का प्रारंभ किया है।

मैं नहीं जानता अवतार मेहेर बाबा मुझ से आरंभ वाली गजल सुनना चाहते थे या यह अंतिम वाली–या फिर कोई अन्य ही। यह निर्णय तो आप ही करें मैं तो इसी पंक्ति में मस्त हूँ ''मेरी खुशी के मालिक तुम भर जुदा न होना।''

ये नज़र–नज़र की तलाश है

मार्च सन् उन्नीस सौ पन्चानबे में मेरी दो बेटियों की शादी हँसी खुशी के साथ सम्पन्न हुई। कहाँ तो पिछले तीन वर्षो से मैं अपनी बड़ी बेटी की शादी हेतु प्रयासरत था किंतु जब उसकी कृपा हुई तो बड़ी बेटी के साथ दूसरी बेटी का भी रिश्ता तय हो गया और मार्च के प्रथम सप्ताह में ही दोनों शादियाँ बड़े ही हर्ष एवं उल्लास के वातावरण में हो गई मैं इस सारे आयोजन में प्रतिदिन प्रियतम बाबा का स्मरण किया करता था और मेरी इच्छा थी कि कार्यक्रम के बाद प्रियतम बाबा की समाधि पर दर्शन करने अवश्य जाउंगा।

परम पिता बाबा के दर्शन की यह आयोजना बनी अठ्ठारह मार्च पन्चानबे को। मैंने एक जीप की व्यवस्था की और उक्त तिथी को बाबा के दर्शनार्थ छिंदवाड़ा से प्रस्थान किया। मेरे साथ प्रियतम बाबा के इस दर्शन कार्यक्रम में मेरे अलावा मेरे तीनों बेटियाँ, मेरी बड़ी बहिन, छोटे दामाद एवं उनकी मां एवं पड़ोस की श्रीमति पूर्णिमा सक्सेना थीं– इस प्रकार हम लोग कुल आठ सदस्य थे। छिंदवाड़ा से हम लोगों ने शाम लगभग तीन बजे प्रस्थान किया था और दूसरे दिन प्रातः नौ बजे शिर्डी पहुँचे, वहाँ नहा–धोकर शिर्डी में पूज्य बाबा के सभी ने दर्शन किए। यह उन्नीस मार्च का दिन था, शिर्डी में बाबा के दर्शन कर उसी दिन मेहेराबाद की यात्रा प्रारंभ की।

हमारे समूह में छोटे दामाद की मां श्रीमति उर्मिला श्रीवास्तव (जो कि शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय से प्राचार्या के पद से रिटायर्ड हुई है) बाबा नाम से उस समय तक अपरिचित थीं। यह उन्होंने स्वयं बताया। मेरी बेटियाँ परिचित थीं प्रियतम की कृपा से, मेरी बहिन तो इसके पूर्व अमरतिथी में मेहेराबाद में शामिल हो चुकी थीं। श्रीमति पूर्णिमा सक्सेना ने भी बाबा नाम सुन रखा था, मेरे पड़ोस में ही उनका निवास होने के कारण। किंतु मेरे इन नये सम्बन्धियों को अवश्य यह नया नाम था। स्वाभाविक ही था, उनके मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई और रास्ते में उस सरल हृदया ने मुझसे बड़ी ही विनम्रतापूर्वक पूछा कि आप जरा बाबा के बारे में बताइये, ये कौन थे, कब थे? आप क्यों और कैसे इनको मानने लगे आदि आदि।

मैने संक्षेप में बाबा के बारे में उन्हें जानकारी दी। मैने पाया कि निरन्तर उनके मन में और अधिक प्रियतम के बारे में जानकारी पाने की जिज्ञासा बढ़ती जा रही थी, उस सीमित समय में जितना भी संभव बन पड़ा मैंने उन्हें बाबा के सम्बन्ध में बताया। इस समय शाम के पाँच बज रहे थे और हम लोग अहमदनगर होते हुए मेहेराबाद पहुँचे।

सबसे पहले प्रियतम बाबा की समाधि पर सभी ने अपना मस्तक नवाया और अपने अपने संचित प्रेम का कोष प्राप्त किया। श्री नाना खेर से बातचीत हुई। परिवार के सभी सदस्यों का उन्होंने परिचय लिया। बाबा के म्युजियम को सभी ने देखा, पीछे एक कक्ष में जितने भी लोग उस समय वहाँ मौजूद थे–सभी को श्री नाना खेर ने बाबा से संबंधित एक संक्षिप्त वार्ता दी। बंबई से एक महिला जो इस समय मेहेराबाद में ही निवास कर रहीं है– उनसे भी बड़ी सहृदयतापूर्वक बात हुई।

शाम सात बजे प्रियतम बाबा की आरती संपन्न हुई। हम लोग सौभाग्य से समाधि के बाहर ठीक उस स्थान पर खड़े थे जहाँ से समाधि के अंदर बना प्रियतम बाबा का भित्ति चित्र बिल्कुल सामने पड़ता था। प्रार्थनाओं का क्रम जारी था। हम सभी श्रद्धावनत हो प्रियतम के दरबार में खड़े थे। सहसा मुझे लगा कि प्रियतम बाबा के पैर का वह भाग जो चित्र में स्पष्ट दिखता है कुछ हिल रहा है। मैने अपनी आँखे मली, कि कहीं कुछ भ्रम की स्थिति न हो–पुनः नजरें बाबा के चित्र पर केंद्रित हुई, पुनः प्रियतम के पैर का अगला भाग जिसे पंजा कहना ज्यादा उचित होगा मुझे स्पष्ट हिलता हुआ दिखाई दिया, रोमांच हो आया। किंतु मैंने किसी से कुछ न कहा। आरती समाप्त हुई, सभी ने प्रसाद ग्रहण किया। मुझे लगा सभी लोग अपनी–अपनी धुन में खोये हुए हैं। मेरे मन में निरंतर बाबा के पैर के हिलने का दृश्य बरकरार था। मैं मान रहा था कि मेरी श्रद्धा के कारण ही मेरी ऐसी मनोस्थिति बन गई है कि मुझे उनके चरण का वह भाग हिलता हुआ दिखाई पड़ा क्योंकि मैं एकटक अपलक बाबा को ही निहारे जा रहा था इसलिए हो सकता है कि एक भ्रम की सी स्थिति उत्पन्न हो गई हो।

किंतु प्रसाद ग्रहण करने के बाद आदरणीया श्रीमति उर्मिला श्रीवास्तव ने कहा– ''यह स्थान तो निश्चित ही बड़ा विशेष है''। मैने देखा वे किंचित भावावेश जैसी

स्थिति में थी। उन्होंने आगे कहा, ''जब आरती हो रही थी तो मैंने देखा कि बाबा के मस्तक के बाये ओर के बाल धीरे–धीरे लहरा रहे हैं–जैसे हवा के एक हल्के झोंके से बाल हिलने लगते हैं वैसे ही धीरे–धीरे हिलती हुई दशा में मुझे बाबा के बाल दिखे'' –तभी मेरी बहिन ने कहा ''भैया मुझे ऐसा दिखा मानों बाबा हाथ के इशारे से जैसे किसी को बुलाते हैं वैसा इशारा कर रहे हों।'' इन लोगों की बातें सुन एवं उनकी स्थिति देख मैं स्वयं विस्मित हुआ जा रहा था। मैंने देखा ये लोग संभवतः अपनी स्वाभाविक स्थिति में नहीं है, जैसे कहीं खो गई हों, प्रियतम को अंतिम बार प्रणाम कर हम लोग लौटे किंतु चर्चा का क्रम वही रहा।

मैने मन ही मन सोचा–हो सकता है–मुझे जो प्रियतम के चरण का हिलना दिखा–वह मेरी मनोदशा के किसी कोण की करामात हो और मुझे ऐसा लगा कि मानो बाबा के चरण का अगला भाग हिल रहा हो। बहिन का भी समझ में आ सकता है कि वे एक बार पूर्व में अमरतिथी पर मेहेराबाद जाकर प्रियतम की कृपा पा चुकी हैं अतः उनके मन की श्रद्धा ने हाथ से अपनी ओर बुलाने का उपक्रम रच डाला हो, किंतु उस सरल हृदया श्रीमति उर्मिला श्रीवास्तव के बारे में क्या तर्क दिया जाये जिसने प्रियतम के बारे में मात्र कुछ ही घंटे पूर्व थोड़ी सी बातें सुनी थी। अभी वह बाबा के संबंध में कुछ भी नहीं जानती थी। पहली बार आज ही जिसने प्रियतम के बारे में कुछ शब्द सुने हों–उसे प्रियतम अपनी उपस्थिति का भान कराते हैं अपने केशों को लहराकर, किसी भी किस्म की बनावटी या मनगढंत स्थिति का वर्णन नहीं था इन लोगों का। ईमानदारी से अपने हृदय के गहरे अंतरमन से उस स्थिति का वर्णन करती और खो जाती कहीं गहरें में। मैं इन दोनों महिलाओं की इस स्थिति को मूक दर्शक की भाँति देखता रहा। मुझे याद है लगभग एक सप्ताह तक प्रियतम के प्रेम का आवेश हम सब पर छाया रहा।

हम लोग वापिस लौटे–छिंदवाड़ा सकुशल पहुँचे। मेरी छोटी बेटी चित्रा ने यात्रा के पूर्व ही कैमरा संभालकर रख लिया था, जिसका मुझे ज्ञान नहीं था। बाबा के दरबार के आस पास उसने कई चित्र भी लिए थे, किंतु उसने प्रियतम बाबा की समाधि के अंदर विराजमान प्रियतम बाबा का चित्र भी लिया है, इसका मुझे ज्ञान नहीं था। कुछ दिन बाद जब चित्र बनकर आए तो उनमें से एक चित्र देखकर मेरा

हृदय ''धक'' से रह गया। मैंने देखा, समाधि के अंदर प्रियतम के उस चित्र में उनके चरण का वह भाग जो मुझे हिलता हुआ दिखाई दे रहा था उस पर एक बड़ा सा प्रकाश पुंज प्रतिबिम्बित हुआ है। वह अद्‌भुत और आलौकिक चित्र इस समय भी जबकि मैं ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ–मेरे सामने रखा है और मैं उसे नमन कर रहा हूँ शायद प्रकाश का वह पुंज मुझसे पूछ रहा है क्या अब भी शक है? या फिर कि कब तक यों ही शक करते रहोगे? देखो जहाँ तुम्हारी दृष्टि केन्द्रित थी वहीं मेरी जीवंत उपस्थिति तुम्हें दिख रही है।

मैंने भी सोचा ठीक ही तो था – ये तो नजर–नजर की तलाश का प्रतिफल है, चूँकि मेरी निगाहें केन्द्रित थी, प्रियतम के चरणों पर मुझे चरणों में उनकी उपस्थिति का अहसास हुआ, और संभव है इन लोगों की निगाहें क्रमशः प्रियतम के बालों और हाथों पर केन्द्रित हों वहाँ प्रियतम ने अपनी उपस्थिति प्रगट की हो।

न सुकूंने दिल की है आरजू, न किसी अज़ल की तलाश है।
तेरी जूस्तजू में जो खो गई, मुझे उस नज़र की तलाश है।।
जिसे तू कहीं भी न पा सका, मुझे अपने दिल में वो मिल गया।
तुझे जाहिद इसका मलाल क्या, ये नजर–नजर की तलाश है।।

आमंत्रण स्वीकार किया

अपने पुत्र चि.शरद के विवाह हेतु मैं परिवार के चुनाव में कठिनाई का अनुभव कर रहा था। अनेकों प्रस्ताव थे किन्तु उपयुक्त रिश्ते की तलाश में कोई न कोई ऐसी स्थिति निर्मित हो जाती जिससे मन भटक जाता। इसी प्रकार लगभग एक वर्ष तक मैं अनिर्णय की स्थिति में रहा। एक दिन विचारों की इसी उधेड़बुन में एक ख्याल आया कि क्यों न यह निर्णय प्रियतम बाबा पर छोड़ दें। ऐसा सोचते सोचते मन सहसा हल्का सा हो गया। अभी कुछ ही दिन बीते थे कि एक दिन एक दिव्य स्वप्न देखा। स्वप्नोपरांत जब नींद टूटी तो यह निश्चय हो गया कि बाबा के दरबार में मेरी अर्जी स्वीकृत हो चुकी है। अब मैं आश्वस्त हो चुका था। लगभग दो सप्ताह ही बीते होंगे कि रीवा से एक परिवार का प्रस्ताव आया। स्थिति कुछ ऐसी बनती चली गई कि रिश्ता तय हो गया। दिनांक छब्बीस नवम्बर पंचानबे को सकुशल विवाह सम्पन्न हो गया और सौ.मनीषा मेरी पुत्रवधु बन मेरे परिवार में शामिल हो गई।

शादी का निमंत्रण पत्र मैने स्वयं अपने हाथ से लिखकर जगत के मालिक अवतार मेहेर बाबा को भी भेजा था। मुझे ज्ञात था ऐसे जो भी पत्र अहमदनगर के पते पर प्रियतम को सम्बोधित कर भेजे जाते हैं उन सबको प्रियतम बाबा की समाधि पर रखा जाता है। मुझे विश्वास है मेरे बेटे की शादी का कार्ड भी अवश्य समाधि स्थल पर बड़ी ही कृपा कर सम्बन्धित सज्जन ने अवश्य ही पहुँचाया होगा।

पच्चीस नवम्बर को पचमढ़ी से रीवा बारात को प्रस्थान करना था। मैने आवश्यक तैयारी कर ली थी, बारात बस से रवाना होनी थी। मैं प्रियतम बाबा का मन ही मन स्मरण कर रहा था कि प्रभु सब सकुशल पहुँचे, आप निरंतर साथ रहें, कि उसी समय डाक से भेजा गया मेरे प्रिय मित्र श्री कृष्ण गोपाल श्रीवास्तव का एक पत्र प्राप्त हुआ। मैने पत्र को खोला तो हृदय प्रसन्नता से भर उठा। श्री श्रीवास्तव जी ने अपने पत्र के साथ अवतार मेहेर बाबा का एक चित्र भी संलग्न कर भेजा था। उल्हास से भरे हृदय में यात्रा की लम्बी दूरी से कभी कभार चिंतित होता हुआ मन खुशियों से पूर्ण निश्चिन्त हो उठा, लगा मानो मेरे लिए, मेरे साथ, मेरे प्रियतम अवतार मेहेर बाबा अपना साकेत धाम छोड़ बारात में सम्मिलित होने आ गए हैं।

पचमढ़ी से रीवा तक की यात्रा सकुशल सम्पन्न हुई, होती भी क्यों न ? बाबा भी तो बारात में थे!!

विवाहोपरान्त बारात अठ्ठाइस नवम्बर को प्रातः लौटकर पचमढ़ी वापिस पहुँची। घर चहल पहल से भरा था, सच में मानव के जीवन का ऐसा दिन परम सौभाग्य का दिन होता है। अपने कार्यक्रमानुसार दिनांक उनतीस नवम्बर को 'प्रीतिभोज' का आयोजन था। दिन भर तैयारियाँ चली। सभी सहयोगियों ने सारे कार्य बाँट रखे थे। सभी लोग मुझे केवल एक ही सलाह देते, ''बाबूजी आत तो सिर्फ बैठे रहिए, हम लोग सब संभाल लेंगे'' और वास्तव में हुआ भी ऐसा ही। नवम्बर माह के अंतिम दिनों में पचमढ़ी के मौसम का मिजाज कुछ ज्यादा ही तीखा हो जाता है अतः शाम के छह बजते बजते ठंड बढ़ गई किन्तु पचमढ़ी वासियों को यह सामान्य सी बात थी। प्रीतिभोज की सारी तैयारियाँ पूरी होने पर मेरे सहयोगियों ने जब मुझे यह जानकारी दी तो प्रभु को पुनः स्मरण कर धन्यवाद दिया और तभी मन में सहसा एक ख्याल कौंधा कि प्रियतम बाबा जब मानव शरीर में होंगे और उनके प्रेमियों के घर जब ऐसे आयोजन होते होंगे और जिसके यहाँ भी बाबा अपनी कृपा कर स्वयं उपस्थित होते होंगे वह कितना भव्य आयोजन हुआ करता होगा। मैं ऐसे ही विचारों में खोया ही था कि एक सज्जन ने उसी समय आकर एक पत्र दिया और कहा ''बाबूजी यह पत्र आज की डाक से आया था, मैं समय पर आपको देना भूल गया अभी स्मरण आया तो आपको देने चला आया''। ये सज्जन मेरे बेटे के ऑफिस के एक कर्मचारी थे। मैने पत्र देखा, पत्र भोपाल से मेरे एक अभिन्न मित्र अनन्य बाबा प्रेमी श्री जोगदंड जी ने भेजा था। पत्र को मैने खोला, उसमें वर–वधु को उनके आशीष तो थे ही, साथ ही साथ प्रियतम अवतार मेहेर बाबा का एक बड़ा ही मनुहारी चित्र। मैने चित्र को प्रणाम किया, मस्तक से लगाया और मेरे खुशी से आँसू भर आए, यह जानकर कि प्रियतम बाबा इस आयोजन में भी सम्मिलित होने आ पहुँचे हैं। एकाएक मेरे नेत्रों से आँसू प्रवाहित होने लगे। अपनी प्रसन्नता के अतिरेक में मैं यहाँ वहाँ निरूद्देश्य टहलने लगा। कुछ लोग मेरी इस स्थिति से किंचित् चकित से अवश्य हुए किन्तु किसी ने कहा कुछ भी नहीं। अब तक शाम सात बजे का समय हो चुका था। भोजन की तैयारी पूरी हो गई थी। अतिथी जनों का आगमन आरंभ हो चुका था।

वातावरण खुशियों व उल्हास से भरा हुआ था कि अचानक मेरे मन में एक विचार पुनः उत्पन्न हुआ कि शास्त्रीय मान्यताओं के अनुसार जब यज्ञ अथवा कोई बड़ा आयोजन परमात्मा स्वीकार करता है तो आशीष स्वरूप यज्ञ के पश्चात् वर्षा होती है जिसे परमात्मा की स्वीकृति एवं आशीष माना जाता है। अभी कुछ समय ही बीता होगा कि अचानक बहुत धीमे धीमे वर्षा होनी प्रारंभ हो गई। कुछ क्षणों तक तो मैं पुनः खुशी के अतिरेक में डूब गया यह सोचा कि परमात्मा ने विवाह रूपी इस यज्ञ को अपने आशीष प्रदान किए है लेकिन अगले ही क्षणों में चिन्तित हो उठा कि यदि यह बारिश तेज हो गई तो सारा आयोजन अस्त–व्यस्त हो जायेगा। आने वाले अपने घरों से नहीं निकलेगें। उस बारिश ने ठंड के तीखे पन को भी कुछ ज्यादा बढ़ा दिया था। सभी लोग चिन्तित हो उठे थे कि असमय और अचानक यह वर्षा कैसे आरंभ हो गई। दिनभर तो मौसम बड़ा साफ रहा, यह अचानक आसमानी परिवर्तन कैसे हो गया। सभी के चेहरों पर परेशानी उभर आई।

मैंने पुनः प्रियतम बाबा से प्रार्थना की कि प्रभु आपका आशीष हमें प्राप्त हो गया। इस आयोजन में आप स्वयं उपस्थित हैं, निरन्तर आपकी कृपा रही, अब यह कृपा भी करो कि वर्षा बन्द हो जाये और सारा आयोजन उसी उल्हासमय वातावरण में परिपूर्ण हो जिस प्रकार अब तक शेष कार्य होते रहे हैं। मैं प्रियतम बाबा का मन ही मन किंचित् चिंतन मुद्रा में स्मरण कर ही रहा था कि अचानक पानी गिरना बिल्कुल बंद हो गया। सभी के चेहरे पर प्रसन्नता झलक उठी। पुनः भाग दौड़, गहमा गहमी प्रारंभ हो गई। आगन्तुकों का क्रम पुनः प्रारंभ हो गया, लोगों का भोजन आरम्भ हो गया किन्तु मेरी आँखों से अश्रुधारा रोके नहीं रूक रही थी, प्रभु की इस महती कृपा पर। अतः मैं लोगों से मुंह छिपाकर यहाँ वहाँ दायें बायें हो रहा था। मैं नहीं चाहता था कि लोग इस शुभ अवसर पर मेरे नेत्रों से आँसू बहते देखें। वे सब भला मेरे हृदय में उठती गिरती प्रभु प्रेम से रसवत होती हुई उन उत्तान तरंगों को कैसे समझ सकते थे ?

कुछ समय बाद मैं अपनी सामान्य अवस्था में आया और सबकी खुशी और प्रसन्नता में स्वयं को उल्लसित मन से शामिल किया।

बंधुओं सच में बाबा हम से कहीं दूर नहीं हैं, वे अभी हैं, यहीं हैं हमारे साथ। आवश्यकता केवल इस बात की है कि हृदय की किस गहराई से आप उन्हें पुकारते हैं। इन सारी घटनाओं को पढ़ने के बाद क्या हम यह स्वीकार न करेंगे कि प्रियतम बाबा ने मेरा आमंत्रण स्वीकार किया, स्वीकार ही नहीं स्वयं उपस्थित भी हुए। श्री के.जी.श्रीवास्तव एवं श्री जोगदंड के पत्रों के माध्यम से एक विशेष समय पर प्रियतम की उपस्थिति एक मात्र संयोग ही नहीं प्रभु की आयोजना थी। तो आप चाहे भले ही इसे स्वीकार न कर पाएँ किन्तु मैं तो उन दिव्य क्षणों को स्मरण कर हर्ष विभोर हुआ जा रहा हूँ–यह सोच कि प्रियतम बाबा तुम आये जब जब भी मैने स्मरण किया, तुम आये अपने समस्त वैभव के साथ, तुम आये इन निरीह प्राणों के हर स्पन्दन की आन रखने..... ।

तान्देन

साँझ तो आँसू में डूब चुकी।
मुस्कान बची हो तो भोर को दे दो।
शायद नृत्य अ काल करो
वह बादल ताल व मोर को दे दो।
तू रह भू पर, चंद्रमा ऊपर
जो है जहाँ पे वही रहने दो।
का करिहै शशि को टुकड़ा
गर पाये भी हो तो चकोर को दे दो।

सन् उन्नीस सौ छप्पन का वर्ष था वह और मैं उन दिनों सागर विश्वविद्यालय, सागर म.प्र. में बी.एस.सी. का छात्र था। पारिवारिक पृष्ठ भूमि प्रभु के गुणगान की रही है, अतः उन दिनों अपने पूज्य पिता श्री का अनुगूमन करते हुए श्री रामचरित मानस का नियमित पाठ किया करता था। मैं देखा करता था कि यदि घर पर किसी संत का आगमन होता था तो मेरे पिताजी उनकी सेवा व व्यवस्था में जो भी परिवार की सीमा के अंदर संभव हो सकता था उसमें कोई कमी नहीं रहने देते थे। उनके भोजन की व्यवस्था भी घर पर ही होती थी और उस विशेष अतिथि के कर कमलों द्वारा तैयार किया गया प्रसाद के रूप में थोड़ा भोजन अवश्य लिया करते थे। परिवार की इस पृष्ठभूमि में पले बढ़े हम आज भी किसी संत या महात्मा की अनदेखी नहीं कर पाते।

उन दिनों मुझे यदि किसी पहुँचे हुए संत का पता चलता तो उनके चरण स्पर्श करने का जहाँ तक संभव बन पड़ता अवश्य ही अवसर प्राप्त करता था। मुझे खूब स्मरण है कि एक दिन जब मैं शाम को सागर नगर के कटरा बाजार में घूम रहा था तो एक व्यक्ति ने एक बहुत ही पतले कागज पर छपे हुए परचे को मेरे हाथ में थमा दिया। मैंने देखा उस पर किसी संत पुरूष का चित्र छपा हुआ है और उसके नीचे लिखा था ''मेरे इतने वर्षो का मौन व्यर्थ नहीं जायेगा.....मेहेर बाबा'' मैने इस

वाक्य को और उस चित्र को बड़े गौर से पढ़ा व देखा। इस जीवन का वह पहला सुअवसर था कि ''मेहेर बाबा'' के नाम को मैंने उस दिन जाना। चूंकि उस पर्चे में यह भी लिखा हुआ था कि मेहेर बाबा कहीं से भ्रमण करते हुए कुछ समय के लिए सागर भी रूकेंगे। मेरे मन में उनके दर्शनों की उत्कंठा बढ़ गई। अगर ठीक से स्मरण आ रहा है तो संभवतः दूसरे दिन ही बाबा सागर आने वाले थे–उनका क्या कार्यक्रम था, और वे कितने समय सागर में रहे–इसका आज उनतालीस वर्ष बीत जाने पर मुझे जरा भी स्मरण नहीं है। सागर में मैं परकोटा नाम से विख्यात मोहल्ले में रहा करता था, यह स्थान सागर के प्रसिद्ध तालाब के समीप ही स्थित है। जहाँ से परकोटा वार्ड का आरंभ होता है, वहीं बिल्कुल सिरे पर उन दिनों एक ''गुरूपरिवार'' रहा करता था। बाई ओर तालाब का एक ऐसा भाग जहाँ सीढ़ियाँ तो नहीं थीं किंतु पानी में जाया जा सकता था, इसलिए उस स्थल पर गाय–भैंस पानी पिया करते थे अतः उस स्थान को ''गऊ घाट'' के नाम से पुकारा जाता था। संभवतः आज भी वह स्थल ''गऊ घाट'' के नाम से जाना जाता है।

उस दिन शाम के लगभग पाँच बजे (मुझे निश्चित दिन व तिथी का आज बिल्कुल स्मरण नहीं है) मैंने देखा कि एक एम्बेसेडर गाड़ी ''गुरूपरिवार'' के घर के सामने ''गऊ घाट'' से कुछ ही दूरी पर खड़ी है। मुझे यह बिल्कुल ज्ञात नहीं था कि यह किसकी गाड़ी हैं, सहसा ही उस गाड़ी से थोड़ी दूरी पर मैं खड़ा हो गया। अकस्मात् ही सामने जब नजर पड़ी तो गाड़ी की खिड़की में से देखा कि एक मनोहारी मूर्ति अपनी पूर्ण तेजस्विता के साथ उसमें विराजमान है व एक पीले रंग का रेशमी शाल उनके वक्ष तक के भाग को ढंके हुए है। मैने पाया कि यह तो वही व्यक्ति हैं जिनका चित्र कल वाले पर्चे में छपा है। याद पड़ रहा है–कुछ उत्सुकता और बढ़ी और मै दो कदम और आगे बढ़ अपलक कुछ दूरी पर खड़ा उन्हें देखता रहा। कुछ ही क्षण बीते होंगे कि देखा कि गाड़ी में बैठे कृपा निधान प्रियतम अवतार मेहेरबाबा ने जरा सी अपनी नजर घुमाई और मेरी ओर एक क्षण को देखा–मैंने मन ही मन उस मधुर चितवन को पिया और हाथ जोड़ दिए। बस यह थी अपने प्रियतम से भेंट की प्रथम घड़ी। उसके बाद मैं वहाँ से चला गया। उस अवसर पर मेरे बहनोई श्री हरिनारायण श्रीवास्तव ने बाबा का एक चित्र अवश्य प्राप्त किया जिसे फ्रेम

करा कर परकोटा स्थित वे अपने घर ले आये थे। आज भी उनके यहाँ प्रियतम बाबा का वह चित्र है।

इसके बाद समया मानों पंख लगाकर उड़ता रहा, न तो मेरी किसी बाबा प्रेमी से भेंट हुई और न ही मैंने प्रियतम बाबा के बारे में जानने का ही प्रयत्न किया लेकिन वह शाम अवश्य अच्छी तरह से स्मरण है जिस दिन आल इंडिया रेडियो से अंग्रेजी समाचारों में यह घोषित किया गया था और मैंने सुना था कि अवतार मेहेर बाबा ने शरीर छोड़ दिया है।

अब तक प्रियतम बाबा के विषय में मैं कुछ भी नहीं जानता था। यहाँ तक कि कोई पुस्तक भी मुझे पढ़ने को नहीं मिली थी। मैं ये तो बिल्कुल ही नहीं जानता था कि यही इस युग के अवतार हैं, लेकिन चूंकि पारिवारिक संस्कार ऐसे थे कि मैं उनके दर्शनों को पर्चे की जानकारी के आधार पर लालायित था – सो दर्शन किए भी – मन में अवश्य यह अवधारणा बनी कि ये कोई बहुत ही उच्च कोटि के संत पुरूष हैं।

इसके बाद स्मरण आता है–दो विद्वानों के मध्य हुए एक रोचक वार्तालाप का। उनके दिलचस्प वार्ताक्रम में ''मेहेर बाबा'' का नाम आया था। उस समय (सन् उन्नीस सौ इकहत्तर) तक एक महानुभाव प्रियतम बाबा की जानकारी तो रखते थे, किंतु संभवतः उनके अनुयायी नहीं हुए थे और दूसरे सज्जन प्रियतम का सान्निध्य प्राप्त कर चुके थे। ये दोनों महानुभाव हैं, प्रो.जगदंबा सिंह राठौर (जो उस समय सागर विश्वविद्यालय में थे) एवं डॉ सुरेन्द्र भटनागर (जो उस समय छतरपुर में पदस्थ थे।) मैं दोनों के वार्तालाप को सुनता रहा–और चुपचाप आनंद लेता रहा। कभी–कभी जब दो उद्भट विद्वानों की टक्कर होती है तो नजारा देखने लायक होता है–यह टक्कर भी कुछ ऐसी ही थी। चर्चा थी जीवन मूल्यों की, समय की मांग की, प्रभु के पाथेय की। दोनों ही टीकमगढ़ में मेरे अतिथी थे। चर्चा स्थल मेरा निवास था–उन दिनों मैं टीकमगढ़ में पदस्थ था।

इस चर्चा में भी बस इतना ही ज्ञात हो पाया कि मेहेर बाबा अपने जीवनकाल में चवांलिस वर्षो तक मौन रहे, और सभी को बिना किसी भेदभाव के प्रेम का प्रसाद बाँटते रहे। नियति फिर छलती रही और समय फिसलता रहा। उस समय मैं

टीकमगढ़ में एक संस्था ''विवेक–चेतना'' से जुड़ा हुआ था जिसमें श्री रामकृष्ण परमहंस एवं स्वामी विवेकानंद के जीवन दर्शन का पठन–पाठन एवं कुछ आपसी चर्चाएं हुआ करती थी। वास्तव में प्रो.राठौर एवं प्रो.भटनागर को इसी तारतम्य में टीकमगढ़ आमंत्रित किया था जिसे दोनों महानुभावों ने स्वीकार भी किया था। इसके बाद जून सन् उन्नीस सौ अठहत्तर में मेरा स्थानान्तरण भोपाल हो गया।

इस समय तक प्रो.जगदंबा सिंह राठौर भी विभागाध्यक्ष पर्यावरण विज्ञान विभाग होकर रीवा विश्वविद्यालय में पहुँच गए थे और उसी विभाग में डॉ सुरेन्द्र भटनागर भी पदस्थ हो गए थे और सबसे बड़ी बात यह कि डॉ.राठौर भी सपत्नीक बाबा प्रेम में लवलीन हो चुके थे। सन् उन्नीस सौ अस्सी की बात है जब श्री राठौर सा. अपने किसी कार्य से भोपाल आये और बातचीत के क्रम में उन्होंने मुझसे उसी वर्ष इकतीस जनवरी को मेहेराबाद में आयोजित होने वाली प्रियतम की अमरतिथी में चलने को कहा किंतु मैं कुछ कारणवश उनके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सका। कुछ समय बाद प्रो. राठौर पुनः भोपाल आए और चर्चा में उन्होंने मुझसे कहा कि प्रियतम बाबा पर लिखी एक पुस्तक ''दी साइलेंट वर्ड'' को मैं हिंदी अनुवाद करूँ, जिसे मैंने न जाने क्यों एकदम स्वीकार कर लिया। यह पुस्तक स्व. श्री फ्रांसिस ब्रेबाजान जो आस्ट्रेलिया के निवासी थे, उनके द्वारा लिखी गई है– पुस्तक का अनुवाद करते हुए मैंने पाया कि श्री ब्रेबाजान एक लेखक कम–कवि कहीं अधिक है। श्री ब्रेबाजान प्रियतम बाबा के साथ लगभग दस वर्षो तक रहे हैं। मैं उन्हीं दिनों भोपाल केंद्र के बाबा प्रेमियों के संपर्क में भी आया। श्री नाफड़े जी, श्री शंभूलिंगम जी आदि लोग बड़े ही प्रेम से मिला करते। कभी–कभी भोपाल में इन लोगों के निवास पर प्रति सप्ताह आयोजित बाबा कार्यक्रम में जाया करता था किंतु बाबा के बारे में मुझे सिलसिलेवार जानकारी नहीं थी इसलिए संशय की स्थिति बनी रही।

फ्रांसिस ब्रेबाजान रचित ''दी साइलेंट वर्ड'' पुस्तक का अनुवाद करने में मुझे लगभग दस माह का समय लगा था–इसे मैंने ''मौन स्वर'' का नाम दिया – इस पुस्तक के अनुवादित हिस्से क्रमवार हमीरपुर से प्रकाशित होने वाली ''मेहेर पुकार'' पत्रिका में प्रतिमाह बड़ी ही कृपा कर श्री शालिगराम शर्मा ने जो उक्त पत्रिका के संपादक हैं–छापा है। लगभग साठ अंकों में सारा अनुवाद प्रकाशित हुआ है–संभवतः

आपने भी कुछ अंश पढे हों। यह मौन स्वर का अनुवाद मुझे बहुत गहरे तक झकझोर गया। मैं नहीं जानता अनुवाद करते समय कितनी बार मैं रोया, चूंकि अनुवादकर्ता एक एक शब्द से बंधा सा रहता है अतः कभी–कभी तो ऐसा लगता था मानों सारी घटनाएं मेरे सामने हो रही हैं जो उस पुस्तक में वर्णि हैं और मैं उनका साक्षी हूँ। आज भी खूब स्मरण है कि वह कौन सा दिन था, कौन सी घड़ी थी कि कौन सी घटना थी जिसने मुझमें प्रियतम बाबा की लगन लगा दी तो कुछ भी समझ में नहीं आता मुझे यह भी स्मरण है कि जिस समय ''मौन स्वर'' का प्रथम अंक ''मेहेर पुकार'' में प्रकाशित हुआ–उसके बाद ही ब्रेबाजान नाम की वह महान आत्मा अपने प्रियतम से मिलने उनके देश चली गई। इस संयोग का भी मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा।

अगले वर्ष अब यह मेरे हृदय की तड़प थी कि मैं चाह रहा था कि कब इकतीस जनवरी आये और कब प्रियतम बाबा की समाधि पर अपना शीश नवाऊँ मुझे स्मरण है बड़ी बैचेनी में कटे थे वे दिन।

श्री रामकृष्ण परमहंस के साहित्य में एक स्थल पर पढ़ा था एक उदाहरण जो वे अपने भक्तों को दे रहे थे कि किसी खंडहर में हजारों वर्षो से अंधेरा पड़ा है किंतु यदि सहसा उसमें दीपक जला दिया जाये तो क्षण भर में वह प्रकाश से भर उठेगा। अंधेरा दूर होने के लिए हजार वर्ष आवश्यक नहीं होंगे किंतु जरा अपनी हालत पर तो गौर कीजिए प्रकाश पुंज की एक किरण पड़ी थी सन् उन्नीस सौ छप्पन में और प्रियतम की समाधि का सानिध्य पाया सन् उन्नीस सौ बयासी में पूरे छब्बीस वर्ष बाद। कितने कितने जन्मों का अंधकार समाया हुआ था इस मानस पर कि उस परात्पर सत्ता को भी अपनी करूणा की मधु कोर को प्रज्वलित करने में छब्बीस वर्ष लग गए।

बरगद का एक बीज जो खसखस के दाने से भी आकार में छोटा होता है उसमें विशाल बरगद के वृक्ष को बनाने की सारी संभावनाएं भरी पड़ी रहती है। पृथ्वी, आकाश, वायु, अग्नि और जल ये पाँचों प्राकृतिक सत्ताएँ–सारी संभावनाओं को समेटते–समेटते इस बिंदु तक ले आते है कि वह एक बहुत ही छोटा सा रूप धारण कर लेता है और बीज कहलाने लगता है। किंतु प्रकृति की यही पाँचों सत्तायें–उसी

छोटे से बीज को पुनः विस्तार देती हैं और वह विशाल वट वृक्ष बन जाता है–पृथ्वी उसे आधार और पोषक तत्व, अग्नि (प्रकाश) वृद्धि और भोजन, जल–जीवन का रस, आकाश विस्तार एवं वायु जीवन गति प्रदान करती है–वास्तव में ये पाँचों तत्व प्रकृति के पाँच सदगुरू हैं प्रत्येक जीवात्मा के।

प्रियतम अवतार मेहेरबाबा के समय भी थे यही पाँचों सदगुरू अपने पूर्ण साम्राज्य के साथ–मानव शरीर में। आखिर क्यों न हो–जगत् नियन्ता जो बड़ी ही कृपा कर जब एक शिशु के रूप में जगती का उद्धार करने आता है तो इन सत्ताओं को भी सद्गुरू के रूप में शरीर धारण कर आना ही पड़ता है। बाबा काल में मेरे हिसाब से प्रथम सदगुरू थीं ''बाबाजान'' जिन्होंने पृथ्वी सत्ता का कार्य किया। द्वितीय थे ''श्री शिर्डी वाले बाबा'' जिन्होंने आकाश सत्ता का कार्य किया तृतीय थे ''श्री उपसनी महाराज'' जिन्होनें अग्नि सत्ता का कार्य किया, चतुर्थ थे ''श्री नारायण महाराज'' जिन्होंने ''जल सत्ता की जिम्मेदारी संभाली और पंचम थे ''श्री ताजुद्दीन बाबा'' जिन्होंने वायु सत्ता की जिम्मेवारी ओढ़ी थी। प्रियतम परमेश्वर चूँकि मानव रूप धारण कर अवतरित हुआ था अतः आवश्यक भी था कि प्रकृति की ये पाँचों सत्ताएं मानव रूप में उनके आगमन के पूर्व ही उनकी अगवानी करने पहुँचती और वे पहुँची भी।

एक बार जब मैं अपने हिस्से का प्रेम प्रियतम की मेहेराबाद स्थित समाधि पर से लेकर वापिस लौटा तो कुछ ही दिनों बाद मुझे सागर किसी काम से जाना पड़ा। सागर में मैं अपनी बहन के घर परकोटा पर रूका। इस बार मैंने देखा कि मेरे बहनोई श्री हरिनारायण श्रीवास्तव ने बाबा का जो चित्र सन् छप्पन में मढ़वाकर अपने कमरे में भित्ति पर लगाया था–वह वहाँ पर नहीं है। मैं यह सोचकर कि शाम को अपनी बहिन से उस चित्र के बारे में पूछुंगा–अपने कार्य से बाहर चला गया किंतु न जाने किस प्रेरणावश सर्वप्रथम मैं गऊ घाट के समीप उसी स्थान पर गया जहाँ सबसे पहले प्रियतम के दर्शन हुए थे। अंदाज से उस स्थान पर वैसे ही खड़ा हुआ व कल्पना में सोचा–यहाँ वह गाड़ी थी जिसमें बाबा बैठे थे..... आदि आदि... इसके बाद मैं अपने कार्य से आगे बढ़ गया।

शाम को जब मैं वापिस घर लौटा और उस कमरे में प्रवेश किया तो पाया कि बाबा का वह चित्र अपने नियत स्थान पर लगा हुआ है। मैने तत्काल अपनी बहिन से पूछा– ''यह चित्र कब लगाया? बहिन ने बताया कुछ दिन पहले कमरे की पुताई करने के कारण सभी चित्र उतार लिए थे और तो सभी चित्र अपनी जगह वापिस लगा दिए थे किंतु बाबा को यह चित्र जाने कैसे ऐसी जगह रखा गया था जो अन्य चित्रों को पुनः लगाते समय प्राप्त नहीं हो सका किंतु आज ही आपके बाहर जाने के कुछ देर बाद अनायास ही एक विशेष जगह से प्राप्त हुआ अतः उसे उसी स्थान पर पुनः लगा दिया। बहिन को भले ही यह बिल्कुल सामान्य सी बात रही किंतु मैं तो रोमांचित हो उठा– तो प्रियतम मेरी बेचैनी जान गए थे–यह सोचकर।

भारत में इस युग के एक महान साथक एवं चिंतक हुए हैं, इतने बड़े कि उनका बड़े से बड़ा आलोचक भी उनक तर्को के समक्ष नत मस्तक हो जाया करता था। उनके अनुसार मेरे शरीर पर एक विशेष जागृत उपक्रम है जिसे उन्होंने 'तान्देन' कहा है। इसके पूर्व मैंने यह शब्द नहीं सुना था किंतु जब ज्ञात हुआ कि यह 'तान्देन' है तो मैं ठगा सा रह गया क्योंकि बचपन में कभी–कभार जब मैं किसी बात से परेशान हो जाया करता था तो मेरी स्वर्गीया मां उस उपक्रम की ओर इशारा कर मुझसे कहा करती थी ''तू क्यों चिंता करता है तेरे शरीर पर ''यह'' है जो सदा तेरी रक्षा करेगा''। वह बेचारी ''तान्देन'' शब्द से परिचित नहीं रही होगी, परिचित तो मैं भी नहीं था किंतु अब समझ में आता है कि मां के ''यह है'' का आशय (यदि वास्तव में ही वह तान्देन है तो) तान्देन से हुआ करता था।

झेन साधकों की आध्यात्कि विवेचना में ''तान्देन'' शब्द की थोड़ी सी खबर मिलती है–संभवतः यह जापानी भाषा का शब्द है। इसके कुछ आधार भी स्पष्ट हैं और कुछ निर्देश भी। सबसे बड़ा निर्देश यह है कि इसे गुप्त रखा जाना चाहिए। मेरे जीवन में अनायास ही सही–यह बात बनती चली गई, यहाँ तक कि मेरी पत्नी को भी ज्ञात नहीं कि ''तान्देन'' क्या है और वह मुझमें है भी या नहीं? आप इसे स्वार्थ की पराकाष्ठा कहना चाहें तो अवश्य कहें। तो उन मनीषी की बात को यदि मैं स्वीकार करूं तब क्या यह ''तान्देन'' का ही कौतुक है कि मै अवतार मेहेर बाबा की कृपा स्थली तक की यात्रा कर सका? किंतु योग शास्त्र की दृष्टि से विभिन्न चक्रों

एवं कुंडलिनी की भांति तान्देन भी हर व्यक्ति में हुआ करता है ऐसा झेन साधकों का मत है, रही बात उसके जागृत या सुषुप्त होने की। जागृत अवस्था में यह शरीर के एक विशेष स्थल पर स्पष्ट दिखाई पड़ने लगता है। हो सकता है यह जागृत उपक्रक कुछ विशिष्ट अर्थो में महत्वपूर्ण होता हो। किंतु सभी जानते हैं कि बाबा काल से अब तक न जाने कितने लोग बाबा की कृपा से उपकृत हुए हैं, उनके साथ रहे हैं उनका प्यार उनका आलिंगन पाया है फिर इसमें ''तान्देन'' की क्या भूमिका रही? तो हो सकता है कि उनका भी तान्देन जागृत हो और उन्हें इसकी खबर भी न हो, या फिर ऐसे पुण्य पुरूषों का इतना अर्जन रहा हो कि उन्हें परमात्मा का सान्निध्य सहज ही उपलब्ध हो गया किंतु मेरे तो ऐसे कोई भी कर्म नहीं रहे, न साध्य न साधना। एक निहायत कमजोर व्यक्ति की आम कमजोरियों के बावजूद भी प्रियतम ने स्वीकार किया– क्या इसे ''तान्देन'' की वजह मानूं या फिर यों कहूँ कि संभव है यही तान्देन एक लंबे अर्से तक मुझे परमात्मा के जीवंत संपर्क से दूर रखे रहा हो और उसके तट का टूटने में आधा जीवन निकल गया।

किंतु मन समझाने को तर्क तो दिए ही जा सकते है–सत्य क्या है? वही एक जाने। राम के अवतार काल में कितनों ने ये जाना और माना कि ये अवतार पुरूष हैं? शक करने वाला एक धोबी उस काल में भी पैदा हुआ था। कृष्णावतार के समय दुर्योधन को भगवान कृष्ण तो मात्र एक ग्वाले के लड़के से अधिक कुछ नहीं थे और इस बाबा काल में भी लाखों की भीड़ में प्रियतम को कितनों ने पहचाना कि मेहेर बाबा इस युग के अवतार हैं? मेरे हिसाब से विश्वास की सृष्टि को दृष्टि का एक हिस्सा बना देना ''तान्देन'' का काम है। मैंने क्या किया, न उस परमात्मा से लिपटा, न उसके साथ हँसा न रोया। जीवन के आधे हिस्से तक के सफर में तो उसकी पहचान भी न थी किंतु वह आया ऐसे चुपचाप – जैसे बड़ी तलाश रही हो– स्वयमेव ही, यह उसकी कृपा है। मेरे तो इसमें कोई प्रयत्न ही नहीं रहे यदि ऐसा होता तो संभवतः मैं प्रो.राठौर की बात मान ''अमरतिथी'' में शामिल होने मेहेराबाद उस वर्ष चला गया होता, किंतु नहीं गया और जब ''वो'' जाने किस दरवाजे से प्रवेश कर गया तो मेहेराबाद जाने को मैं बेचैन हो गया।

वह आया मुझे हार्ट की दवा देने के बहाने, मेरे हृदय के आपरेशन करने के बहाने, वह आया विदेश की धरती पर मुझे अपनी गाड़ी में बिठाने, वह आया श्री काले के भाई को बचाने, वह आया मसूरी में मेरी छात्रा के प्राणों की रक्षा करने, वह आता है उस दिन मुझे दाल और दूध खिलाने, वह आया उमरिया में मेरी विषादग्रस्त स्थिति में मुझे संभालने, वह अपनी उपस्थिति दर्शाता है समाधिस्थल पर अपने चरण कमल के हौले से झकझोर के साथ–अरे वह मुझ जैसे बेसुरे व्यक्ति से भी पूरे तरन्नुम में गजल का गायन करवा देता है, मैं तो कोरा का कोरा ही रहा इसमें मेरी कोई योग्यता नहीं, कोई योगदान नहीं।

आज जब उम्र के इस पड़ाव पर पहुँचा हूँ तो सोचता हूँ कि अंतर से बाहर का, आचार से धर्म का, ज्ञान से भक्ति का, विचार शक्ति से विश्वास का जो मेल बैठाने की मैं चेष्टा करता हूँ वह प्रियतम आपकी कृपा का ही फल है। जीवन में जो अंतर मिला है बाह्य मिला है, सुख मिला है और दुख भी मिला है सिर्फ जिंदगी ही मिली है ऐसा नहीं मौत भी मिली है, केवल मित्र ही नहीं शत्रु भी मिला है इसलिए मुझे त्याग और भोग दोनों पवित्र हैं – लाभ और हानि दोनों सार्थक हैं। सारे सुख–दुख, संपत्ति–विपत्ति और विरह–मिलन की सार्थकता मेरे जीवन में सर्वांग सुंदर हो– एक अखंड प्रेम की परिपूर्णता में एकाकार करने की मैं कोशिश करता हूँ , जितनी प्रशंसा मिली है, उतनी निन्दा भी, यदि जीवन में क्रन्दन मिला है तो तान्देन भी इसलिए आज मैं कह सकता हूँ ‘‘समस्त लोक लोकान्तर के उर्ध्व में शांति के आसन पर विराजित हे ‘‘मेरे प्रिय तुम एक’’ मुझमें आकर मेरे बन जाओ।

****

मानव का अन्तिम ध्येय

ईश्वर समझाया नहीं जा सकता, वह बहस से सिद्ध नहीं हो सकता, वह सिद्धांत के अन्तर्गत नहीं आ सकता, ओर न वह बहस मुबाहसा से समझाया जा सकता है। ईश्वर को हम केवल आचरण में बरत सकते हैं।

सत्यता का अनिवार्य अनुभव होना चाहिए और परमात्मा की दिव्यता को प्राप्त करना चाहिए और उसको जीवन के आचरण में बरतना चाहिए।

सत्यता कभी समझी नहीं जा सकती, उसका साक्षात्कार तो चेतन अनुभव द्वारा होता है।

इसलिये मानव का अन्तिम ध्येय सत्य का अनुभव करना और ''अहम् ब्रह्माऽस्मि'' यह अवस्था मानव शरीर रहते हुए प्राप्त करना ही है।

मेहेर बाबा